

उज्ज्वल - प्रवचन

महासती उज्ज्वल कुमारीजी के राष्ट्रीय महापुरुषों के
सम्बन्ध में किए गए प्रवचन



संपादक

रत्नकुमार जैन, रत्नेश

धर्मगार्गी, साहित्य-रत्न

बोरा घ १-माला—१

वृत् १०५० प्रथम सत्करण ३०००

मूल्य दत्त आने
सहाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रकाशक
मूलचन्द्र नडेचाने
सहायक मन्थी
भारत जैन मन्गलान्क, वरा।

मुद्रक
नारायणदास जाजू,
मुख्य प्रबंधक
धीट्टण प्रि० वर्कर्स वधा।

प्रकाशक की ओर से

महाशता उ जलकुमारीजी के राष्ट्रीय प्रवचनों का यह संग्रह पाठकों के हाथों में देत हुए प्रसन्नता होती है। पाठक देखेंगे कि इन प्रवचनों में सजुचित साम्प्रदायिकता और धार्मिक जशद्विष्णुता को साधवाजी ने किंचित् भी स्थान नहीं दिया है। हमारे देश में तिस विद्याल मानव भावना और धर्म समन्वय और कम शील नैतिकता का आवश्यकता है उसके दशन इन प्रवचनों में हो सकते हैं। सामित समान और साम्प्रदायिक वेशभूषा में रन्कर भा उ वन्जुनागजा ने अपना आन्तरिक उदार दृष्टि का परिचय दिया है।

भारत जैन महामण्डल केवल असाम्प्रदायिक ही नहीं, बल्कि एक सर्वोदयी सत्या है, जो मर धर्मों और सब सतों के प्रति आदर भाव रखती है। जहाँ कहीं अहिंसा और सत्ताह के दशन होते हैं वहाँ महामण्डल अपनाय दस्तता है। हमा दृष्णिकोण की पूर्ति में सहायक स्वरूप ये प्रवचना प्रकाशित किये जा रहे हैं।

महाशताजी के धार्मिक प्रवचनों का एक संग्रह अत्यन्त प्रकाशित हो चुका है। उसके बाद महामण्डल के अध्यक्ष श्री राजाजी की मुलाकत होने पर चर्चा में उ जलकुमारीजी के सामने बात रखा गद थी कि कोह सर्वजनारयोगी संग्रह हो तो महामण्डल को उसे प्रकाशित करने में प्रसन्नता होगी। भाद रत्नकुमारजी से पत्र व्यवहार हुआ और उन्होंने यह संग्रह भेज देने की कृपा का।

यह संग्रह 'बोरा प्रथम भाग' की ओर से प्रकाशित हो रहा है। इस पुस्तक की किर् से जो आय होगा उसमें ऐसी ही काह पुस्तक प्रकाशित की जा सकेगी।

पुस्तक की छपाई सफाई आदि में तिन मित्रों का सहयोग मिला है उन्हें नहीं मुलाया जा सकता। भाई भी० जमनालालजी ने प्रूफ सशोधन तथा विषय को समझाने के लिए उत-शीर्षक देने आदि में काफी भ्रम किया है। वे इतने निक्कट हैं कि उनका 'आभार' मानने में भी संकोच होता है। शुद्ध तथा शास्त्र मुद्रण में आकर्षण प्रस का जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम अत्यंत आभारी हैं।

आशा है पाठक इस पुस्तक को अपनाएंगे और हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे ताकि इसके दूसरे संप्रदाय में प्रकाशित किए जा सकें।

निलकंठी चौक
वर्षा, २२ जून '५

—मूलचंद्र बडजाते



आ भार

यह पुस्तक 'बोरा प्रथ-माला' की आर मे प्रकाशित हो रहा है । इंदौर का श्री० बोरा परिवार वृत्ति में धार्मिक है । महामण्डल और 'जैन जगत' मासिक के प्रति शुरू से ही उसका विचार अनुकूल और उदार रहे हैं । यद्यपि वे स्वामिजीवाभी समाज और सम्प्रदाय क हैं तथापि उनके दिल में सब सम्प्रदायों के प्रति सद्भावना और सौजन्य है । बोरा परिवार के प्रमुख श्री गुरुजमल जी बोरा (पम गुरुजमल हस्तीमल बोरा कपडे क व्यापारी, तुकोजापय कथाय मार्केट, इंदौर) की प्रवृत्ति सदा ही धार्मिक कार्यों की ओर विशेष रहा है । आज यद्यपि वे वृद्धावस्था के कारण अग्रस्त हैं और किता टरह की इच्छा प्रकट करन में असम्य है, तथापि अपने पिताजी का भावना का स्वयाल कर श्री पुष्कराजजी ने साहित्य प्रकाशन को उपयुक्त समझ कर महामण्डल की जोर से 'बोरा प्रथ माला' गुप्त करने का इच्छा व्यक्त की । महामण्डल उनके इन विचार का आदर और अभिनन्दन करता है ।

यह प्रन नता की वृत्त है कि भा० गुरुजमलजी के दोनों पुत्र श्री० हस्तीमलजी और श्री० पुष्कराजजी यापार करत हुए धार्मिक कवि रलते हैं और यथाशक्ति धर्म तथा सेवा कार्य में प्रवृत्त रहने हैं ।

हमारी अभिलाषा है कि जिस सद्भावना से यह प्रथ माला गुरु हुइ है उसमें से अच्छी अच्छी सज्जनोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो और बोरा परिवार को समाधान हो कि उनकी सद्भावना साधक हो रहा है और उनके दान का सदुपयोग हो रहा है ।

10

-

-

-

सम्पादकीय

महाशती श्री उ ज्वलकुमारराजा जैन समाज की एक विदुषी माध्वा और आदश विचारिका हैं। उनके प्रवचनों की मानव-हृदय पर जो छाप पड़ती है, वह पत्न और मुनने वालों ने कभी नही दे। गत वर्ष 'उज्वल बाणी' के नाम से सर्वांग के प्रवचनों का सब प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, अरु इन वर्ष उ ज्वल प्रवचन क नाम से उनका यह एक और नवान प्रकाशन हो रहा है। उज्वल बाणी में धार्मिक प्रवचनों का संकलन था। परन्तु इस संग्रह में उनके राष्ट्रीय प्रवचनों का अधिकता है, जो कि किन्हीं स्वास मौकों पर सांख्यिक समारंभों में किये गये हैं, जैसा कि अप अनुभव करेंगे। इन प्रवचनों में कहीं भी साम्प्रदायिकता की बू नजर नहीं जायगा। महात्मा बुद्ध विवेकानन्द, टैगोर, निलक और गांधी जैसे महापुरुषों पर एक जैन माध्वा का अपन बेश में रह कर कहना कुछ आसान नहीं है। लकिन यह पत्ने वाले दृष्टि नान सर्हेंगे कि इस दिशा में भी सर्तोची का ज्ञान कितना गहन है। और व किस हद तक अपनी बात को कहन में समर्थ हैं। साम्प्रदायिक बचनों में बंध हुए होने पर भी उनका मानस बड़ा मुल्यसा हुआ है। विषय प्रतिपादन की उनका शैली बड़ी सरली है।

श्री० विषमदासजी राका, अध्यक्ष भारत जैन महासङ्घ, बधा वा यदि प्रेम पूरा आग्रह न होना तो समच है यह पुस्तक अभी पाठकों के हाथों में न पहुँच पाता। अत यहाँ में उनका आभार मान कर, अगर पाठकों ने इन प्रवचनों को पत्ने का जग्रह रखा तो में अपना अम संकल समर्पण।

'जैन प्रकाश' कार्यालय
पायधुनी, वम्बई ३

—रत्नकुमार जैन 'रत्नेश'

अनुक्रम

१	भगवान् महावीर स्वामी	१
२	हुड्डय	११
३	मानवता प्रभा बुद्ध और बापू	२०
४	पुत्र-पुत्र गांधीजी	२८
५	स्वामी विवेकानन्द	३४
६	निलक भद्राचल	४३
७	विन्कपि रवीन्द्रनाथ टैगोर	४९
८	महात्मा गांधीजी	५८
९	महात्मा का महा प्रयाग	६८
१०	महात्मा और राष्ट्रीयता	७७
११	महात्मा गांधी और विज्ञान	८३

भगवान् महावीर स्वामी

पवित्र दश निहार

आज गे टाई हजार बर पहले म० महावीर दश भारत भूमि पर जमे थे । उनका जन्म बिहार में हुआ था । जमे वे बिहार में और बिहार में ही सर्व प्रथम उन्होंने धर्म प्रचार भी किया । इन्हींके समकालीन म० बुद्ध भी एक महान् धर्म प्रचारक थे । उन्होंने भी बिहार में ही विचरण किया था । आज क जमाने के महान् सन्त पुरुष महात्मा गांधीजी ने भी अपने सत्याग्रह की गुरुआत बिहार से ही की थी । इन तानों महापुरुषों के कार्यों की गुरुआत बिहार से होने के कारण ही बिहार एक पवित्र दश कहा जाता है ।

वर्णों की दशा

म० महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ थे और मामा था राजा चेटक । चेटक का सत्कालीन गण राजों पर काफी प्रभाव था । भगवान् ने ३० वर्ष की अवस्था में घर छोड़ा और साधु दास ग्रहण की । उस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों का दशा बहुत खराब थी । ब्राह्मण लोलुपी हो गये थे क्षत्रिय युद्ध प्रिय और विक्रमसायन मये थे, और वैश्य स्वार्थी । शूद्रों की तो दशा ही विचित्र थी । वे तो पशुओं से भी बदतर सम्झे जाते थे । इसी विराम स्थिति को सुगमन के पिय भगवान् ने मुनि-दीक्षा की और दुःखता को दूर जगामा तस मुक्त करने का उपाय सखा । इनके लिये उठे तौन शब्द बारह बर तक मन तपस्या का और उनके बाद उठे लो उपाय सूत्र उनका उपदेश करने हुए उठे तौन अस्ति, अपरिग्रह और शनैः शनैः तस देव गच्छे जन्मिया का दिया ।

तीन 'द'—कार और 'अ'—कार

पुराणों में एक कथा जाती है। एक बार देव, दानव और मानवों ने मिलकर ब्रह्माजी को खुश करने के लिये तपश्चर्या की। ब्रह्माजी समाधिस्थ थे। कई दिनों बाद जब उन्होंने अपने नेत्र खोल तो सामन देवों की खड़ा पाया उन्हें देखकर ब्रह्माजी ने 'द' शब्द का उच्चारण किया और समाधिस्थ हो गये। देवों ने समझा हम विलासी हैं, भोगी हैं, अतः ब्रह्माजी ने हमें 'द' से इन्द्रिय दमन करने का उपदेश दिया है। इसके बाद दानव आये। उनका दखलकर भी ब्रह्माजी ने 'द' कहा और अपने नेत्र बंद कर लिये। दानव क्रम से अतः उठे समझा, हमें ब्रह्माजी ने 'द' से दया का उपदेश दिया है। अतः मैं जब मानव आये तो उनको भी ब्रह्माजी ने 'द' ही कहा और पुनः समाधिस्थ हो गये। मनुष्यों ने सोचा हम कृपण हैं अतः ब्रह्माजी ने हमें 'द' से दान का उपदेश दिया है। इस कथा में जैसे ब्रह्माजी ने तान 'द' कह कर सबको शांति का मार्ग बताया वैसे ही भ० महावीर ने भी अगा-न्त दुनिया को शान्ति का मार्ग बताते हुए तान 'अ' मुनाये, जिनका अर्थ है अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त।

मत्स्य लोक को स्वर्ग बनाना हो और शाश्वत शांति प्राप्त करना हो तो यह इन तीनों सिद्धांतों से प्राप्त की जा सकती है।

प्रज्ञा और अहिंसा का समन्वय

दूसरे प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में 'प्रज्ञा' की विशिष्टता है। अपने ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि करना प्रज्ञा है। मानव अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है, दूसरे प्राणा नहीं कर सकते। ५०० वर्ष पहले की तरह हा अब भी हाथी छूट बनाकर रहते हैं, पक्षी भी ५०० वर्ष पहले की तरह अब भी अपना घर बनाते हैं और उनमें रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन होता हो या हुआ हो ऐसा नहीं लगता। परन्तु मनुष्य की यह बात

नहीं है। उसकी प्रज्ञा का निरन्तर विकास होता रहता है। लेकिन यह याद रखने का बात है कि यदि इस प्रज्ञा में अहिंसा का साथ न रहा तो यह तारक के बदले नाटक हो जाती है। आज विज्ञान ने तरक्की की है और उसने अणुम भी सोज निकाला, परन्तु अहिंसा को साथ न रखने से यह तारक के बदले नाशक बन गया है। यूरोप की गरीब जातियों ने क्या किया है? अपनी प्रज्ञा के बल पर उन्होंने दूसरे देशों को खूब लूटा-खसोटा और उनका शोषण कर अपनी स्वाध पूत ही तो की है। भयंशों न भारत के साथ यही तो किया है। इस तरह उनका प्रज्ञा तो बढ़ी, पर उसका साथ अहिंसा न बढ़ा इसलिए परिणाम भी खराब ही हुआ। प्रज्ञा के साथ साथ अहिंसा का यत्न भी अनिवार्य है। इसीलिये भगवान् ने साठे बारह वर्ष बाद तब अपना मौन छोड़ा तब सप्रथम उन्होंने यही कहा

‘मा ह्यो’—किसी को न मारो।’

अगर तुम किसी को मारोगे तो तुम्हें भी मरना पड़ेगा। अगर तुम किसी को छेदोगे तो तुम्हें भी छेदना होगा और अगर तुम किसी को भेदोगे तो याद रखो तुम्हें भी भेदना पड़ेगा। म० बुद्ध ने भी यही कहा है

नहि वेरेन वेराणि सम्मत्तीथ फदाचन ।

अवेरेन च सम्मन्ति एम धम्मो सन्ततो ।

बैर से बैर का कभी भी अन्त नहीं आ सकता। इस युग के महान् मत्त पुरुष और भारत के राष्ट्र पिता न भी यही कहा है कि

‘तुम्हें मारने को आने वाले को यदि तुम मारोगे तो उसका हितैषी तुम्हें मारने का दौड़ेगा, इसके तुम्हारा मरण भी सुनिश्चित है। इस तरह जब तुमको मारना ही है तब उस मरने से तो अच्छा है कि तुम पिता मारे ही मरने को तैयार रहो।’

इस तरह जो सदेव भगवान् ने २०० वर्ष पहले सुनाया था, यही हमें गांधीजी ने भी सुनाया।

सच्चा सुख अहिंसा में है

प्राणी मात्र सुख चाहता है, दुःख कोइ नहीं चाहता। तब-सा आपत्ति आते ही मनुष्य भगवान् को याद करने लगता है। इसका अर्थ यही है कि हम दुःख नहीं चाहते। लेकिन जिसे हम चाहते हैं वह सुख धार्मिक नहीं होना चाहिये। दूसरों के दुःख से मिलनेवाला सुख भी हमें नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसा सुख भी सुख नहीं है। सब सबको दुःख देकर सुख प्राप्त करें तो परिणाम में कोई सुखी नहीं हो सकेगा। इसके तो सब अपना दुःख हा बढावेंगे। हम एक को दुखी कर सुख चाहते हैं तो दूसरा हमें दुखी कर सुख प्राप्त करता है, अतः दुःख ही बढ़ता है, सुख नहीं। अतः इस शांति सुख का सच्चा माग भगवान् ने सदिचारह वर्षों तक जगत् में रह कर और अनाय लोगों में भ्रमण कर खोजा और उन्हें जो उगाय मिला उसका उपदेश दते हुए उन्होंने कहा— 'सच्चा सुख अगर फर्ही है तो वह अहिंसा में है, सब स प्रेम करने में है।' इसका मूल पून बनात हुए उन्होंने कहा— 'जीआ जीर जान दो।' एक तरफ यह बात भगवान् ने हमारे सामने रखी और दूसरी तरफ 'जीवो ज वरय जीवनम्' की बात भी सुनाई दी। यानी एक जीव दूसर जाव के आभार क बिना जी हा नहीं सकता। यदि अहिंसा ही सच्चा मार्ग है तो एक का जीवन दूसरे के जीवन का आभार बनना है इसमें अहिंसा कैसे रहती है? यह प्रश्न लोगों के दिलों में उठना स्वाभाविक ही है। इसी प्रश्न को एक प्रेता लखरू ने अपनी भाषा में *Levin is Killing*—जाना मारना है—कहा है। इस प्रश्न के उत्तर में हमारे सत्त्वचिन्तकों ने कहा है कि 'जाना मारना' यह एक श्रेय द्वाककत

मात्र है पर यह मानव का धर्म नहीं है। मानव का धर्म तो यही है कि वह कम से कम हिंसा करके अधिक-से अधिक अहिंसा का ही पालन करे। इसी बात को अंग्रेजी में भी कहा गया है कि Killing, the least is leaving, the best — कम-से कम हिंसा करते हुए अहिंसा का अधिकाधिक पालन करना ही जीवन का सर्वोत्तम सार है। यही बात भगवान् ने भी अपने साठे बारह वर्ष के लम्बे मौन की खोलने समय कही थी— 'मा ह्यो मा ह्यो' जिसको वेदों में भी 'मा हिंसात् सर्वं भूतानि' कहकर समझाया गया है।

सयम

मनुष्य के हृदय में शुभ और अशुभ दोनों तरह की भावनाएँ आती हैं। उसके दिल के एक कोने में प्रेम, वात्सल्य, क्षमा, सन्तोष और सहृदयता रहती है और दूसरे कोने में काम, क्रोध, अहंकार, और लोभ बन्धु-वासनाएँ रहती हैं। जब तक इन वासनाओं पर संयम नहीं किया जाता तब तक अहिंसा का पालन नहीं किया जा सकता। आज विश्व के महान् युद्धों के मूठ में लोभ ही तो है! लोभ पर संयम नहीं है इसीसे युद्ध होते हैं और मनुष्य मनुष्य को मारते हैं। इसलिये भगवान् ने अहिंसा का उपदेश देते हुए कहा कि अगर तुम्हें अहिंसा को अपने जीवन में उतारना है तो संयम और तप का पालन करो। तप और संयम अहिंसा के दो पाँव हैं जिनके बिना अहिंसा चल नहीं सकती। संयम का अर्थ केवल भगवा या सफेद यत्र पहन लेना ही नहीं, पर अपनी वासनाओं का दमन करना है।

तप

अहिंसा के आराधक को अपनी वासनाओं का दमन करना ही होगा। अहिंसा का दूसरा पाँव है तप। उपवास या मन करना मात्र ही तप नहीं है।

दे, पर अपने स्वाध की बलि देना भी तय है। कल्पना कीजिये एक व्यापारी है, जो बड़ा नातिमान् है और सादगी से रहता है। व्यापार में अनाति करना उसे नहीं मुझता। उसने किसा दूसरे व्यापारी से एक चीज का सौदा किया। सौदा करते ही उस चीज के दाम पाँच गुने बढ़ गये। अब देना वला अगर सौदेके भाव में वह चीज दे तो उसका घर गिरस्ती ही बिगड़ जाय, बाल-बच्चे भूखों मरने लग जायें और बेचारे का दीवाला ही निकल जाय। तब नीतिमान् व्यापारी सोचना है कि ऐसा स्थिति में मेरा क्या कर्तव्य है? हमकी स्थिति तो मालोमाल हो जाने जैसी है, पर अहकी व तरफ़ा बोलती है— अगर मैं ऐसा करूँगा तो उसके बाल-बच्चे दुखी, अनाथ और कगाल हो जायेंगे। अब वह उस व्यापारी के पास गया और बोला “मैं भाई, अपना सौदा रद्द करता हूँ।” यही भावना अहिंसा है। अपने लोभ पर विजय पाना सयम है और स्वाध का त्याग करना तप है। जब तक हममें इस प्रकार का सयम और तप न हो तब तक हमारी अहिंसा अपूर्ण ही रहेगी, यह पूर्ण नहीं कही जा सकेगी। भगवान् के इसी अहिंसा तत्व को हमारे राष्ट्र पिता गांधीजी ने भी अपनाया था। उ होने अपनाया ही नहीं, अपने जीवन में ताने-बाने की तरह उन कर भी लिया लिया था।

चापू की अहिंसा भी व्यापक थी

कुछ लोग कहते हैं कि महात्माजी का अहिंसा ता मानव तक ही सीमित था। लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं है। जो ऐसा कहते हैं वे अभी गांधीजी को पूरा समझे नहीं हैं। गांधीजी के जीवन में ऐसे कई प्रसंग मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतात होता है कि उनकी यत्नगत अहिंसा मानव तक ही सीमित नहीं थी बल्कि हमसे भी आगे और बहुत आगे सुधम जीवों तक थी, जैसा कि हम उनके-दो एक जीवन प्रसंगों से भगीमानि जान सकेंगे।

महात्माजी तब यरवड़ा जेल में थे तब काका साहब भी उनके साथ थे। सरदार वल्लभभाई पटेल भी उसी जेल में थे, पर अलग कमरे में थे। एक दिन सरदार ने अपने जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ एक चिट्ठी लिखकर महात्माजी के पास भेजी। उसमें लिखा था 'मेरे पास पूणियाँ नहीं रही हैं, भेजियेगा।' महात्माजी के पास भी पूणियाँ नहीं थीं अतः उन्होंने काका साहब से कहा—'मेरे पास पूणियाँ नहीं उचा हैं तुम अपनी पूणियाँ सरदार को दे दो।' काका साहब ने कहा—'मूले पूणियाँ बनाना नहीं आता, तब मेरी पूणियाँ समाप्त हो गायगी तब मैं ऊहाँ से लाऊँगा। मेरे पास इतनी पूणियाँ नहीं है कि मैं सरदार को दे सकूँ।'

महात्माजी ने कहा 'तुम फिर मत करो, मैं तुम्हें पूणियाँ बनाना सिखा दूँगा, लेकिन तुम अभी अपनी पूणियाँ सरदार का दे दो। वे पूणियाँ मंगा रहे हैं।' काका साहब ने अपनी पूणियाँ सरदार के पास भिजवा दीं और लगे पूणियाँ बनाने। दरवाजा के दिन थे अतः धनुआ बंद पौतने में बराबर काम नहीं दे रहा था। महात्माजी ने कहा—'धनुआ की तात पर जरा नीम के पत्त रगड़ोगे तो यह बराबर काम दगा। सामने ही नीम का पेड़ था। काका साहब उठे और झट दम-शीत पत्त तोड़ कर ले जाये। लेकिन महात्माजी न जब इतने पत्ते देते तो काका साहब से कहा 'तुम्हें ता दो पत्तों की ही जरूरत थी फिर इतने सारे पत्ते क्यों तोड़ लाये?' इतने पत्ते तोड़ कर तो तुमने उस नीम का अपराध किया है।'

एक दूसरा प्रसंग और सुनिये। काका साहब ने महात्माजी को बूचा बना कर नीम का एक दातुन दिया। गांधीजी ने दातुन किया और फिर २० दातुन देते हुए काका से कहा—'दस दातुन का बूचा तोड़ कर रख लो और कल फिर मुझ यही दातुन दना।' काका साहब ने कहा—'आप ऐसा क्यों करते हैं? नाम के पट तो यहाँ बहुत हैं।'

है, पर अपने स्वार्थ की बलि देना भी तप है। कल्पना काजिये एक यापारी है, जो बड़ा नीतिमान् है और सादगी से रहता है। "यापार में अनाति करना उसे नहीं सुहाता। उसने कित्ता दूसरे यापारी से एक चीज का सौदा किया। सौदा करते ही उस चीज के दाम पाँच गुने बढ़ गये। जब देने वला अगर सौदेके भाव में वह चीज दे तो उसका घर गिरस्ती ही बिगड़ जाय, बाल-बच्चे भूलों मरने लग जायँ और बेचारे का दीवाला ही निकल जाय। तप नीतिमान् यापारी सोचना है कि एसी स्थिति में मेरा क्या कर्तव्य है? इसकी स्थिति तो मालोमाल ही जाने पैसी है, पर उसकी अन्तःप्रतीति बोलता है— अगर मैं ऐसा करूँगा तो उसके बाल बच्चे दुखी, अनाथ और कगाल हो जायेंगे। अतः वह उस यापारी के पास गया और बोला 'मं भाई, अपना सौदा रद्द करता हूँ।' वही भावना अहिंसा है। अपने लोभ पर विजय पाना सयम है और राग का त्याग करना तप है। जब तक हममें इस प्रकार का सयम और तप न हो तब तक हमारी अहिंसा अपूर्ण ही रहेगी वह पूर्ण नहीं कही जा सकेगी। भगवान् के इसी अहिंसा सत्त्व को हमारे राष्ट्र पिता गांधीजी ने भी अपनाया था। उन्होंने अपनाया ही नहीं, अपने जीवन में ताने-बाने की तरह उन कर भा दिया दिया था।

यापू की अहिंसा भी व्यापक थी

कुछ लोग कहते हैं कि महात्माजी का अहिंसा ता मान्य तक हा सामित था। लेकिन ऐसा समझना ठाक नहीं है। जो ऐसा कहते ह वे अभी गांधीजी को पूरा समझे नहीं हैं। गांधीजी के जीवन में ऐसे कई प्रसंग मिलत हैं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी व्यक्तिगत अहिंसा मान्य तक हा सामित नहीं थी बल्कि इससे भी आगे और बहुत आगे सुझ जावों तक थी, जैसा कि हम उनके दो एक जीवन प्रसंगों से मत्री-मानी-जान सकेँगे।

की आशा का पालना कर।' युवक ने पूछा 'इस आशा क्या है ?' ईशु ने कहा 'तू अपने पड़ोसी के साथ हमदर्दी का व्यवहार कर। उसने प्रेम कर।' युवक ने कहा 'यह तो मैं करता ही हूँ।' तब ईशु ने कहा: 'तू अपना साग घन गरीबों में बांट दे।' यह सुन कर वह युवक चला गया। भला धनवालों को यह बात कैसा अच्छा लग सकता है। उस युवक को भा अच्छी न लगी। तब ईशु ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा—'सूर्य की नोक में से ऊँचा निकल जाना आसान है, पर घावानों का स्वर्ग में जाना आसान नहीं है। भगवान् न भी यही कहा है कि जब तक मानव परिग्रह रहता है तब तक वह धर्म का पालन नहीं कर सकता। यतमान् युद्धों के मूल में यही परिग्रह वृत्ति है। इसलिये भ० महावीर ने अहिंसा के साथ अपरिग्रह का संदेश दिया था। यहाँ यह भी समझ लेना जरूरी है कि सम्पत्ति जैसे परिग्रह है वैसे ही साम्प्रदायिकता भी एक भयंकर परिग्रह है। परिग्रह से जसे कई अनर्थ हुए हैं वैसे ही साम्प्रदायिकता ने भी भयंकर अनर्थ किये हैं। हमारे देश में कौमी साम्प्रदायिकता ने क्या नहीं किया ? उसने हमारे राष्ट्रपिता को भी हमसे छीन लिया। समझ लेना चाहिये कि मतान्तर भी ऐसा ही पाप है। इसी के साथ साथ एक और नया परिग्रह राष्ट्रीयता का पैदा हो गया है। यह सुधरे हुए लोगों का है। यह भी हमारा आदर्श नहीं होना चाहिये। हमारा आदर्श तो नित्यवस्तुत्व होना चाहिये। Nationalism नहीं Universalism होना चाहिये। यही बात भगवान् ने अपने अपरिग्रह नामक दूसरे सिद्धांत में कही है।

अनेकान्त

तासरी बात जो उ इति कही, वह है अनेकान्त। दुनिया जिसे स्याद्वाद के रूप में भी जानती है। हर मनुष्य की अपनी अपनी विशिष्ट

महात्माजी ने कहा—“जब तक यह दातुन चले तब तक उसका उपयोग न करना उस पेड़ का अपराध करना है।” इससे यह मलीभौति जाना जा सकता है कि महात्माजी की व्यक्तिगत अहिंसा मानव मर्यादित ही नहीं, वह सूक्ष्म जीवों तक भी व्याप्त थी।

गीता और अहिंसा

एक बार गांधीजी से मिलना हुआ था तब पूछा था कि गीता में तो श्रीकृष्ण ने युद्ध का विधान किया है तब फिर अहिंसा क्यों कही गई है ! इसका उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा था—“गीता के अन्त में तो अहिंसा का ही विधान किया गया है। हिंसा से जो सिद्धि मिलती है वह ऊपरी होती है—दम्बावगी हाती है। सच्ची सिद्धि तो अहिंसा से ही प्राप्त की जा सकती है।”

आज से पचीस सौ वर्ष पूर्व जो बात भगवान् ने कही थी वह आज भी उतनी ही उपयोगी है, वह साफ जाहिर है।

परिग्रह पाप का मूल है

दूसरी बात उन्होंने अपरिग्रह की कही। अहिंसा या सत्य तो पया यवाची शब्द हैं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परिग्रह हिंसा से ही बढ़ता है। उसके मूल में अहिंसा नहीं होती। कई मनुष्य यह कहते हैं कि हम दाय और प्रामाणिकता से पैसा इकट्ठा करते हैं, इसमें बुरा क्या करते हैं ! लेकिन वे यह नहीं जानते कि भगवान् ने तो साफ कहा है कि परिग्रह—अग्रह रखना ही पाप है। फिर चाहे वह दाय से किया गया हो या नीति से किया गया हो। परिग्रह में सिवा पाप के और कुछ होता ही नहीं। क्योंकि पाप का मूल ही परिग्रह है।

परिग्रह ही धार्मिक नहीं होता :

वार्शियत्र में एक उदाहरण है। म० ईशु के पास एक धनवान् युवक आया और बोला : ‘मुझे कल्याण का मार्ग बताइये।’ ईशु ने कहा : ‘तू ईशु

बुद्धदेव

जयती का अर्थ

आज का त्रिपदादशमी का पर बुद्धदेव का जन्म दिवस है । दुनिया में अनेकों मनुष्य जन्म लेने और मरते हैं, पर हम सब का जयतियों नहीं मनाते । जयतियों उन्हीं की मनाई जाता है, जिनका प्यास से हमारे हृदयों में भी प्रकाश उत्पन्न होता है । जयती मनाने का अर्थ है उन महापुरुषों की दाह पूजा का जय के अर्थ में हिसार करना । एतद्द्वारा हम उनका मान निभालना ।

महान् धर्म प्रवर्तक बुद्ध

महान् बुद्ध एक महान् धर्म प्रवर्तक थे । उनके धर्म का प्रसार पूरे देशों में भा हुआ । आज भा लाखों बर्मा, लद्दाख, जापानी तथा चीनी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं ।

धर्म मनुष्य के जीवन का एक उत्तम जग है, इसलिये धर्म प्रवर्तक तथा धर्म प्रचारक मानव समाज की उत्तमोत्तम और सर्वश्रेष्ठ सेवा करता है । बुद्ध को मानवजातों की सख्या अधिक है, लेकिन बुद्ध के इस निमित्त में या धर्म प्रवर्तन में नहीं भी उल्लास का गंध नहीं है । इस्लाम तथा इसाई धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहाई हैं, पर बौद्ध के नाम पर रक्त का एक घूँट भी नहीं गिरा है ।

पारमिताओं की साधना -

बुद्ध ने अपने पूर्वजन्मों में बुद्धत्व के योग्य बनाने वाली दान, प्रज्ञा, वाच, शान्ति, सत्य, श्रद्धा, मैत्र और उपेक्षा इन

दृष्टि होती है। भ० बुद्ध में मध्यम मार्ग की दृष्टि है। शक्यराज में अद्वैतवाद भी और भ० महावीर में अनेकान्त की दृष्टि थी। इसका अर्थ यह है कि एक ही सत्य को समझने के अलग अलग कर दृष्टिकोण होते हैं। एक ही बात का एक पूर्णदर्शी पुरुष अपनी तरह जानता है और उसी को अपूर्ण पुरुष दूसरे रूप में देखता है। दोनों सत्य देखने हैं पर अलग अलग देखते हैं। इसका समझने के लिए योगदान ने अनेकान्त का दृष्टि चतता का दी, जिसका सक्षिप्त अर्थ 'ही' यहाँ 'भी' है। याना अपना ही आग्रह न रखत हुए दूसरे की मायता को भी स्वीकार करना है। जिसको आज की परिभाषा में सर्वधर्म समभाव कह सकते हैं। अनेक धर्मों को अपने में मिला लेना अनेकान्त है और इसका नाम महात्माजी ने सर्वधर्म समभाव रखा है। अनेकान्त याना अनेक धर्म। किन्वा भी धर्म का खडन करना अपने ही धर्म का खडन करने जैसा है, अतः अनेकान्तता क्या किन्वा धर्म का खडन नहीं कर सकता। अनेकान्त पाप का खडन कर सकता है, सत्य का नहीं। फिर चाहे व० पूर्ण हा या अपूर्ण पर उम मय का खडन न करना ही अनेकान्त है। और यही सर्वधर्म समभाव भा है।

इस प्रकार भ० महावीर ने आइसा, जयगिरह और अनेकान्त का क्रमग अर्गात अभयम और विचार विमता की दूर करने के लिये जो अमर सन्देश दिया है उसे यदि कोई आज भी अपने जीवन में अतारे तो मानव समुदाय का कल्याण हो सकता है।

महावीर जयती)
१९४९)

[यार जयती पर इसराज मोरारज
दाशरथल, अधरा में दिशा गया प्रवचन]

दुपल मच रही थी। दिन में खाना-पीना छूट गया और रात में नींद नहीं आती थी। इस तरह कितने ही दिन रात तक यन् मनोमग्न चलता रहा।

महाभिनिष्क्रमण

एक बार राजा शुद्धोदन अपने साथ कुमार सिद्धार्थ को लेकर बसन्त की शोभा देखने गये। राजा शरिग शोभा देख रहे थे, पर सिद्धार्थ कुमार का चिन्तनशील मानस कुछ और ही देखने में लीन था। पास ही के खेत में एक किसान अपने बैलों पर सटासट चाबुक मारते हुए हल चला रहा था। बैलों को चुपचप अपने रजामा की गार सह कर भी काम करा पन्ता था। यह देखकर कुमार को बड़ा दुःख हुआ। कुछ दूर आगे, जहाँ उड़ने जग बागकी से देखा कि एक छिपकली खाँटिया को धीन धीन कर खा रही है। इतने में एक सॉप बिल्डों से निकला और वह उस छिपकली को दगते दबने खा गया। पर तु सॉप की भी कजा आगइ थी। ऊपर से एक नील नजर उस सॉप को देखा तो वह झपट कर उसे ऊपर उठा ल गई। इतने में एक गिकारी ने अपने तार का निपना लगाया और तक्षण धर चील ऊपर से नीचे आ गिरी। यह सब इस तरह हुआ कि किसी साधारण मनुष्य के समझ में भी नहीं आ सकता, लेकिन कुमार न जीवन कण्ड का निष्पुत्र स्वरूप इतने से ही म आभाति समझ लिया। उनके मुँह से तक्षण उद्गार निकल पड़े कि— भरे रे! जगत् ऐना विचित्र है! बलवानों का निर्बलों को दैराज कर मौन मजा करना क्या यही सारे व्यवहार का सर है। इस दूसरे प्रसंग में कुमार सिद्धार्थ का मन दुनिया के स्वर्गों व्यवहार से सजया उन्हासीन हो गया। अंत में एक दिन उनका यह स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि मध्यरात्रि में वे अपने नवजात गिष्ठु राहुल और देवी यशोधरा को निद्राधीन छोड़कर महाभिनिष्क्रमण कर गये।

दस पारमिताओं को सिद्ध कर आज स २५०० वर्ष पूर्व कविःवस्तु के राजा शुद्धोदन की महारानी मायावती की कोल में जन्म लिया था और उनका नाम सिद्धार्थ कुमार रखा गया था ।

वृद्ध पुरुष का दर्शन

यौवनावस्था प्राप्त होने पर कुमार सिद्धार्थ का विवाह एक स्यस्ता और गुणवती राजकन्या यशोधरा के साथ कर दिया गया । एक बार कुमार सिद्धार्थ राजउद्यान में जा रहे थे । वहाँ उ होने एक वृद्ध पुरुष को देखा जिसकी कमर झुई झुई थी, सिपर सरेद माल आ गये थे, मुँह में दाँत नहीं थे, देखने तथा सुनने की शक्ति धाण हो गई थी और हाथ-पैर काँप रहे थे । ऐसे वृद्ध पुरुष को देखकर उन्हें विचार आया कि एक दिन मैं भी ऐसी स्थिति में आजाऊँगा इसलिए अभी से उनके लिये सावधान हो जाना चाहिये ।

रोगी और मृत का दर्शन

कुछ दिनों बाद उन्होंने एक वामार मनुष्य को देखा, जो रोग की अतृप्त पीडा से कराइ रहा था । उसे देख कर उन्हें विचार आया कि मेरा शरीर भी याधिया का घर है, एक न एक दिन मेरा भी यही हाल होगा ! अतः मैं जब उ हों एक मृत देह को देखा तो सोचा : देह नश्यत है, अतः मेरा भी एक दिन इसी तरह अन्न होगा । ऐसा विचरते विचरते उनका हृदय ग्लानि से भर आया और उसके प्रति उदासीन हो गए । उद्यान में जाता छोड़कर वे पुनः राजमहल में लौट आये । पर तु राजमहल में भी उन्हें चैन नहीं आया । रगमूल का रग भी उनके वैराग्य भाव को बर्बाद कर दिया था । तब, रोग और मृत्यु उनका नश्वरों के सामने चित्रपट की तरह घूम रहे थे । और इनके लिये उनके हृदय में भारी उपल

भ० बुद्ध ने फिर से मानव समाज को एक करने के लिये जन्म जातिवाद का विरोध किया और गुण तथा चारित्र्य का महत्व बताते हुए उद्देश्य कहे—

न जज्ञा वसल्लो होती न जज्ञा होति वम्भणो ।

वम्मण वसल्लो होति, कम्मणो होनि उम्भणो ।

—जाति से कोई ब्राह्मण या गृह्य नहीं होता, कर्म से ही ब्राह्मण या गृह्य होता है ।

जातिवाद का रोग

जातिवाद का यह रोग मानव समाज को हजारों वर्षों से लगा हुआ है, जो कि आज भी दूर नहीं हुआ है। बिहार में 'बुद्ध' और 'हु' नाम की दो जातियाँ हैं जो अपने मित्र-भ्रू को मनुष्य ही नहीं मानतीं। यह ब्राह्मणों से भी अधिक छूआ-टूट का लयाल रखती हैं। यह कुत्ते का छुआ खा सकती हैं, पर ब्राह्मण के शय्य का पानी नहीं पा सकतीं। एकबार बिहार में जब दुष्काल पला था, तब उस जाति के कुछ लोग भी एक रात भोजनालय में भोजन करने आया करते थे। एक दिन जब वे भोजन कर रहे थे, तब एक खिस्ती फोटोग्राफर उनका फोटो लेने के लिये वहाँ जा पहुँचा। उसने वहाँ जैसे ही पैर रखा वैसे ही वे लोग अपना भोजन छोड़ कर भाग गये। यह जातिवाद का ऊँच नाच का रोग है, जिसके लिये भ० महावीर और बुद्ध की शिक्षा हा राम बाण औपधि है।

पशु-यज्ञ के विरोध में बुद्ध का साहस

उस समय पशु-यज्ञ में धम माना जाता था। निर्दोष पशुओं की यज्ञ में बलि दी जाती थी। इससे दूररी तरफ पशुओं की कमी पडने से खेती में जो नुकसान होता था उसका परिणाम भी मानव-समाज को ही भोगना पडता था। इस पशु-यज्ञ का विरोध करना और इसके लिये अशु

मत्स्य की उपलब्धि

सत्य की शोष के लिये उन्होंने महात्मा चण्डी की ओर रुख कर लहा कर मत्स्य का प्राप्ति की। बुद्ध शास्त्र उ होने गिर चार अरु सत्य का तपस्यमार्ग का उल्लेख देता हुआ किया। यह मत्स्यमन्त्र मानव जीवों को दो बंधों से मुक्त करता है। मानव जीवन का परलोक बंधन का मांसभोग की आसक्ति है। इस बंधन में बंध कर मानव समाज का अधिकांश भाग जारम में लड झगड कर दुःख को प्राप्त करता है। जब यह त्याग है। भगवान बुद्ध के जमाने में कामांधमीय की भक्ति छोडकर कितने ही परिश्रम सह तपस्य होये थे जो कि आसन पुरुष का सहा कर देर का दमन करत थे। लेकिन यह सब बिना प्रयत्न के करते थे। यह सब समय के मानव समाज का दुःख बंधन था। इन दोनों बंधनों से मुक्त रह कर भगवान बुद्ध ने मत्स्यमार्ग का राग बोध था।

चार जाय सत्य

भगवान बुद्ध ने चार जाय सत्यों का उल्लेख किया था यथा—
 प्रकार ६ (१) वस्तु माय शोकक और दुःखमय है। (२) तृष्णा दुःख का मूल है। (३) तृष्णा के कारण से दुःख का नाश होता है—अस होता है। और (४) राग द्वेष और जहभाव दूर होने से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

बुद्ध की प्राप्ति

महात्मा और भ० बुद्ध दोनों समकालीन महापुरुष थे और पंच प्रचार का धर्म—विहार भा दोनों का एक ही था। दोनों रागद्वेषों के त्याग का अन्तर भारत के एक कोन से दूसरे कोने तक पहुँच गया था। भ० बुद्ध ने अनेक सामाजिक गुरुत्वों का सामना किया था। ऊँच नीचे के जाति भेदों का अन्वह मानव समाज के टुकड़े टुकड़े कर दिने थे।

उसने म० बुद्ध के अहिंसा के उपदेश को ग्रहण कर लिया। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ऐसे अनेकों प्रसंगों में भी म० बुद्ध ने अपनी जिन्दगी को जोखिम में डाल कर अहिंसा का प्रचार किया था।

पैर से पैर दूर नहीं होता

वैर-वृत्ति द्वेष या शत्रुता भी एक ही हिंसा ही है। द्वेष से द्वेष की वृद्धि होती है और पैर से पैर ही बढ़ता है। वैर-वृत्ति से हम सामने वाले को वैर वृत्ति को दवा नहीं सकते। उमका अत तो अग्रे वृत्ति से ही किया जा सकता है। अद्वेष से ही द्वेष को जीता जा सकता है। और अहिंसा से ही हिंसा का नाश किया जा सकता है। बुद्ध न भी अपनी वाणी में कहा है

नहिं चरेण चेरणि, समतीधि वदाचन ।

अवेरेण च समती प्पा धम्मो सनन्तनी ।

मगवान् बुद्ध इस सन्देश के उपदेशक बनने से पहले उपासक बने थे। यह निश्चित रूप से बुद्धि या शक्ति नहीं है बल्कि जीवन के अनुभव का सार है।

एक कवि की कल्पना

एक अज्ञेय कवि उनका एक सुन्दर प्रसंग अपनी कविता में चित्रित करते हुए कहता है—एक बार मगवान् बुद्ध जंगल में चले जा रहे थे। इतने में सामने से एक भयंकर राक्षस आया और बुद्ध की मजाक करते हुए बोला—“ये शांति के उपदेशक ! और प्रेम की बातें करने वाल ! मैं अभी तुझे मार डालता हूँ और फिर देखना हूँ कि तेरा प्रेम और शांति का अलवट क्षरना तब भी वह सकता है क्या ?” यह कहकर उसने अपनी तलवार उठाई और बुद्ध के सामने पर दी। म० बुद्ध ने

जमाये हुए ब्रह्म पुत्राहता का विरोध करना कोई कम साहस का काम नहीं था। लेकिन जिदगी जोखिम में डाल कर भी भ० बुद्ध ने यह करने वाली घोर हिंसा के विरुद्ध अरना नारा बुलंद किया और अहिंसा का संदेश सारे जगत को सुनाया।

राजा बिभिसार को उसके यहाँ होने वाले यह की बात कहने के लिये भ० बुद्ध कई मील लम्बा रास्ता काट कर भी वहाँ पहुँचे। यह की तैयारी हो रही थी। ऋत्विज हाथ में चमकता हुआ दुरा लेकर खड़ा था। ब्राह्मण मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। पाँच ही में एक निर्दोष पशु मेटा परपर कौंप रहा था। महाराज बिभिसार दोनों हाथ जोड़े आसन पर बैठे हुए थे। मन्त्रोच्चारण के स्वर जैसे जैसे बढ़ने लगते हैं जैसे जैसे ऋत्विज का हाथ भी छुरा लेकर ऊपर उठने लगना है और ऊपर सामने खड़े हुए मूक पशु के कंठ से अन्तिम चीन्च भी निकल पड़ती है। इतने में ही वहाँ भगवान बुद्ध आ पहुँचे और उस मूक पशु को अपनी आँक में लेकर सिंहनाद करते हुए बोले 'ठहरो पुत्राहित, ठहरो।' इस तेजस्वी राजकृति को देख कर सब स्तब्ध हो जाते हैं। ऋत्विज के हाथ बाँधने गले हैं औ छुरा नीचे गिर पड़ता है। राजा राग में आकर कहता है "आहुति के लिये कितने अथक प्रयत्नों द्वारा ज्योतिषियों ने यह शुभ घडा बतलाई थी, पर उसमें तुने व्यवधान डाल कर जो मथकर अरगाध किया है, क्या उसका तुझे भान है? इस अरगाध की सजा क्या हो सकती है, इसकी तो तुझे खबर है न!"

बुद्ध ने शांति से जवाब दिया— "हाँ राजन! यह मैं जानता हूँ। इतने जावों की रक्षा के खानिर यदि मुझ अपना सिर भी दना पड़े तो इसकी तैयारी कर के ही मैं वहाँ आया हूँ।" भ० बुद्ध का इस स्वापेण की भावना का प्रमान राजा बिभिसार के हृदय पर पड़ बिना न रहा।

शुद्ध आत्मविका, ६ सम्यक्-याचार मानी शुद्ध पुद्गलार्थ, ७ सम्यक् स्मृति-
शुद्ध स्मृति और ८ सम्यक् समाधि मानी चित्त की शुद्ध एकाग्रता नामक
आय अष्टांग का भाग बताया है। ये आर्य अष्टांग आर्यपुद्गल के आठ
गुण हैं।

आज हम अपने आप को आर्य कहलाने का गौरव तो अनुभव
करते हैं, पर आर्यत्व के गुणों में से कितने गुण हममें हैं, क्या इसका
भी विचार हम करते हैं ? सच तो यह है कि आज हमारा जीवन इन आठ
गुणों से बिल्कुल गिरावट दिशा में बह रहा है। हमारे जीवन में १ तो
सम्यक् दृष्टि है, न सम्यक् वाक् और न सम्यक् आजीविका ही। ये तीन भी
सम्यक् हो जाय तो दुनिया से आधे अनर्थों का अन्त हो सकता है।
सच्चा आर्य कहलाने के लिये इन आर्य अष्टांगों को अपने जीवन में ताने
बाने की तरह धुन लेने की जरूरत है। जब हम इनका पालन कर चार
आर्य-सत्य का अनुकरण करने लगेंगे तभी हम ५० बुद्ध की जयंती को
सफल कर सकेंगे।

मिनया दशमा
स० १९९९

[चैतन्य योगाभ्रम, घाटकोपर द्वारा आयोजित
सभा में दिया गया प्रवचन]

शांति और प्रेम भरे शब्दों में कहा—'प्यारे मित्र ! मैं तो अभी भी तुम्हें चाहता हूँ, मुझे तुम पर द्वेष नहीं, प्रेम हा उत्सव होता है।' आगे चलकर वह अप्रेज कवि कहता है कि यह नम्र वाणी सुन कर वह भयकर राक्षस एक कबूतर के रूप में परिवर्तित हो जाता है और बुद्ध के चरणों में लोट जाता है। कहने का सारास इतना ही है कि प्रेम से भयकर राक्षसवृत्ति को भी कबूतर का तरह नम्र बनाया जा सकता है।

युद्ध अज्ञाति के कारण है

इस युग में गत २५ वर्षों में हा दो विषययुद्ध हो चुके हैं। दुनिया ने बड़े विषम कष्ट सहन किये हैं। नैतिक जीवन पर युद्धात्तर जो बुरा परिणाम हुआ है, उसे हम सभी जानते हैं। यूरोप के लोग गत दोनों युद्धों का स्मरण करते ही धरधर कापने लगते हैं। वे युद्ध और हिंसा से डर तो गये हैं, फिर भी वे आज तीसरे विश्वयुद्ध को यौता दे रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इस विषम परिस्थिति को मिटाने का अगर कोई मंत्र है तो वह केवल भ० युद्ध का दिया हुआ प्रेम मंत्र ही है। इसा से सारी दुनिया में अमन चैन और सुख शान्ति स्थापित की जा सकती है।

भ० युद्ध के आज के जन्म दिवस को जगत् सफल करना हो तो उसका एक ही उपाय है, और वह यह कि प्रेम और मैत्री भावना का बीजा रोपण काजिये उनकी पुष्टि और वृद्धि कीजिये और अपने जीवन में उत्तार लीजिये।

आर्य-अष्टांग आर हमारा जीना

भ० युद्ध ने चार आर्य-सत्य को सिद्ध करने के लिये १ सभ्यगृहस्थि यानी सच्चा ज्ञान, २ सभ्यग सङ्कल्प यानी शुद्ध विचार, ३ सभ्यक वाक्-यानी सत्य भाषा ४ सभ्यग् कर्म-शुद्ध कर्म, ५ सभ्यक आजीव

ग़लतों का आत्मोत्कष

भ० महावार तथा बुद्ध के जमाने में जन्यजों का स्थिति बड़ी खराब थी। वेदों के अध्ययन तथा धर्म पाठन का उन्हें अधिकार ही नहीं था। जैन और बौद्ध धर्म ने जातिगत भेद भावा का अस्वीकार किया था जिससे वे दोनों धर्म अत्यन्तों के लिये आशावाद रूप बन गये थे। वे उच्च जाति के अर्थियों से बचने के लिये उड़ी उमर से इन धर्मों को स्वीकार करते थे। २० महावीर के भ्रमण-मय में ब्राह्मणों के पुत्रों से पीड़ित और उनसे निरस्त दो हरिजन भार्द चित्त और समूह तथा अन्य हरिजन हरिकेशी और भेतारन जादि आसानी से प्रविष्ट हो आ मोक्षार्थ प्राप्त कर सकते थे। इसी तरह घेर गाथा में भ० बुद्ध के अरु हरिजन शिष्य थेमुनीत का भी उदाहरण जाता है। धर मुनीत एर नीच जाति में उत्पन्न हुआ था। श्राद्ध लगाने लगाने जब एक दिन उसने भिक्षुओं के साथ बुद्ध को देखा तो अपना श्राद्ध टोककर फेंक कर उसने उन्हें प्रणाम किया और अपने को भी भिक्षु-सभ में दीक्षित कर लेने की प्रार्थना की। बुद्ध ने भी उसकी भक्ति भावना को देख कर दीक्षित कर लिया था।

गायू का हरिजनोद्धार

आज के अत्यन्तों की स्थिति देख कर युग पुरुष गायीत्रा का हृदय भा काव उठा था, जिनके उद्धार के लिये उन्होंने मगौरय प्रयत्न किया और खुद 'हरिजन' नाम से संबोधित किया। पूजनीया कस्तूरबा से लेकर अनेक मित्र कुटुम्बियों का और अन्य सनातनियों का विरोध धन पर भी उन्होंने अपने आश्रम में हरिजन बालकों को रखा और उनका पोषण अपने बालक की तरह किया। इतना ही नहीं, सभी तरह के भेद मान्यता का खान पान लगनादि सबधों को भी खाल किया। वे बहुधा हरिजनों के बीच में ही निवास करते थे। इस्वर के द्वार सबके लिये खुले होने चाहिये-

मानवता प्रेमी बुद्ध और बापू

बुद्ध और गांधी जयंतियों का सगम

आज विजयादशमी का दिन म० बुद्ध का जन्म दिवस है। साथ ही साथ हमारा साथ देश गांधी जयंती के निमित्त गांधी सप्ताह भी मना रहा है। गांधी-सप्ताह कल २ अक्टूबर को पूर्ण होगा, इसलिये आज बुद्ध और बापू दोनों के जन्म दिवसों का सगम हो जाने में यह पर्यं महान् बन गया है।

अहिंसा की जरूरत

दोनों ही महापुरुष अहिंसा के पैगम्बर थे। म० बुद्ध के जमाने में हिंसा का धार्मिक क्षेत्र में साम्राज्य था और अजय गांधी युग में राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में हिंसा का तांडव रूप हो रहा है। म० बुद्ध ने क्रान्ति कर धार्मिक क्षेत्र की हिंसा और पशु मज्जादि की प्रथाओं को दूर कर पुनः अहिंसा का साम्राज्य स्थापित किया था। बापू ने भी राजनीतिक क्षेत्र में हिंसा का सामना अहिंसा से किया और अन्त में विजय प्राप्त कर दुनिया को दिखा दिया कि हिंसा को भी अहिंसा से परास्त किया जा सकता है। हिंदू जैसी दुनिया के पांचवे हिस्से का प्रजा को उन्होंने एक घूट भी रक्त बहाये बिना गुलामा से मुक्त करा दिया। आज दुनिया का सब से अधिक आवश्यकता इसी अहिंसा की है। बुद्ध ने ही हुए जगत को शांति से प्रभु महावीर, बुद्ध और बापू की अहिंसा से ही मिलन सक्ती।

म० बुद्ध तथा महात्मा गांधी इन दोनों महापुरुषों के जीवन तथा उपदेश में जो साम्यता पाई जाती है वह आज हम दोनों की पुण्य-तिथि पर देखने का प्रयत्न करेंगे।

धार्मिक समन्वय

भगवान् बुद्ध के धर्म का आधार पवित्रता, त्याग और अन्धकार है। पंचसाल-अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और मादक पदार्थों का त्याग) रूप धर्म का उन्होंने प्रचार किया था। गांधाजी की विचारधारा का मूल मा सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य मादक द्रव्यों का त्याग और अस्तेय रहा था, जो कि भ० बुद्ध के पंचशील धर्म का ही आधुनिक स्वरूप है।

सन्माननाद्वारा प्रतिष्ठा

आज से २५०० वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध कह गये ह कि धृणा करने से धृणा दूर नहीं होती। वह प्रीति करने से ही मिटता है। इस प्रकार हमको आनन्द पूरक चीजा चाहिये और हम से जा धृणा करते हैं उनसे भी हमें धृणा नहीं करनी चाहिये। उनके बीच में रहत हुए भी हमें धृणा प्रीतिन रहना चाहिये। लालच पर उदारता से और असत्य पर सत्य से विजय प्राप्त करनी चाहिये। महात्माजी भी प्रेम से द्वेष को, अहिंसा से हिंसा को नाश के लिए करते ही रहते थे। उन्होंने केवल कहा ही कहा था, जीवन भर अहिंसक लड़ाया भा लगे थीं। उन्होंने कहीं भी शक्ति या गोलीबार जेठ यातना या गनी प्रहार के सामने अपना हाथ भी उंचा नहीं किया था।

साम्प्रदायिक और दार्शनिक मतों के बीच बद्ध

भ० बुद्ध के समय में मत मतान्तर और पथ सम्प्रदायों के अनरु शगटे थे। दार्शनिकवाद विवादों का पार नहीं था। आत्मवाद, अन्तर्मवाद, नित्यत्व, अनित्यत्व, द्वैत अद्वैत, इन्द्र कृतत्व, निर्दि वरवाद, सृष्टिकृतत्व अनादित्व आदि दार्शनिक प्रश्नों के विवादों में प्रेम मैत्रा रूपी शुद्ध धर्म का करना मुश्किल हो गया था। भ० बुद्ध ने इन सब धारों को छाड़ कर प्रेम, मैत्रा, अहिंसा और सत्य धर्म के पालन का सदाश मुनाया। उन्होंने कहा—

इसका उन्होंने आन्दोलन किया और जावन में यह सिद्ध भी कर दिखाया। इस प्रकार इन दोनों महापुरुषों ने हरिजन उदार का कार्य एक समाप्त किया था।

सेवा-शील बुद्ध और मीनू

बुद्ध का सेवा भाव और उसके लिये उनका उपदेश हम इस एक प्रसंग से ही जान सकते हैं। विनय पिटक में इसका उल्लेख आता है कि एक मित्र को पत्र की बामारी था और वह मल मूत्र में भरा हुआ पत्र रहता था। सयोग से एक दिन म० बुद्ध मित्रु आनन्द के साथ विहार करते हुए वहाँ आये। उन्होंने सबसे पूछा— “आयुष्मन् ! तुझे कैसा मादम होता है ?” मित्रु ने कहा— “मुझे पेट का रोग है।” बुद्ध ने पूछा “तुम्हारी कोई सेवा करने वाला भाई है या नहीं ?” उसने कहा— “मित्रुओं के लिये भार रूप हूँ इसलिये मेरी सेवा कौन करना चाहेगा ?” म० बुद्ध ने आनन्द से कह कर पानी मगाया और फिर उसे दोनों ने साथ कर एक रज्जु बिछोने पर गुलाया। इस प्रसंग को लक्ष्य में रख कर म० बुद्ध ने अपने मित्रुओं से कहा— “मित्रुआ ! तुम पहले अपने रोगी मित्रुओं की सेवा क्यों नहीं करते ? जिनको मेरा सेवा करनी हो, वे पहले रोगी का सेवा करें। उनकी सेवा ही मेरी सेवा है।” इस प्रकार उन्होंने सेवा का जादवी उपसिद्ध किया था।

गांधीजी की सेवा भावना तो सुविदित है। सेवाभ्राम में वे क्षुष्ट राम परचुरे शारंगी की सेवा स्वयं अपने हाथों से किया करते थे। खुजला या चिंता शर्मा के दर्दी जब उनके पास आते थे तो वे स्वयं अपने हाथों से उनका मलमूत्रपनी किया करते थे। कष्टियों को अपने हाथों से एनिमा भा देते थे। इस तरह दोनों ही महापुरुषों ने अपने जीवन में सेवा का एक आदर्श उपसिद्ध किया था।

महात्माजी ने भी अपने आश्रम के ग्यारह प्रती में साम्प्रदायिक कलहों में निरर्थक पर होती हुई अपनी शक्ति को बचाने के लिये सबधम समनाथ का समानेश किया था। वे भी कहते रहते थे कि किसी भी धर्म की निंदा किये बगैर उसमें रूढ़ी हुई जा-अइयों सत्य प्रस्थापन करनी चाहिये। इस दिशा में भी दोनों के दृष्टिकोणों में समानता थी।

धर्म का उपदेश कर ?

भ० बुद्ध यह मानते थे कि तब तक मनुष्य का जन्मादि का प्राथमिक आवश्यकता पूरी न हो तब तक नीति, धर्म या आध्यात्मिकता चाहे कितना उँचा उपदेश क्यों न हो, उसके गले नहीं उतरा जा सकता। मनुष्य के पेट का खट्टा जब तक नहीं भरता तब तक वह स्थिर चित्त होकर कुछ सुननेवाला नहीं है। इसलिये पहले अन्न चाहिये और फिर ज्ञान, ऐसा उनका मानना था। जैसा कि उनके इस एक प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है।

एक बार भ० बुद्ध आल्वी गाँव में एक दरिद्र, परन्तु अस्र मनुष्य की योग्यता देख कर वहाँ आये। बुद्ध आये, यह सुनकर उस दरिद्र मनुष्य को भी धर्म के दो चोल सुनने की इच्छा हुई। परन्तु दुर्भाग्य से उस दिन उसका एक बैल वहीं भाग गया था। अतः उसने बैल को ढूँढ कर ही धर्मोपदेश सुनने का तय किया। बैल मिल गया पर दुपहर का समय हो चुका था। खावा-पीवा कुछ नहीं था अन्न भूख भी और की लग गई थी। फिर भी वह घर नहीं गया और दर्शन के लिए पहले बुद्ध के पास आया। बुद्ध ने उसकी धुवाँ वेदना को समझा और पहले उसके खाने की व्यवस्था की, जब उसकी भूख मिटी और मन एकाम्र हुआ तब बुद्ध ने उसे चार आय सत्य का उपदेश दिया। इसके उसकी शान दृष्टि मिट उठी और वह भी बौद्ध मिथु बन कर सभमें शामिल हो गया।

सृष्टि ईश्वर ने बनाई हो या अनादि हो, मोक्ष का स्वरूप ऐसा हो या वैसा परन्तु जय तुम तृष्णा को छोड़ोगे तभी दुःख से मुक्त होओगे। अहिंसा सत्यादि का पालन करोगे तो सिद्ध हो जाओगे—बोध प्राप्त कर लोगे। राग द्वेषादि का नाश करोगे तो चाहे जिस स्वरूप का मोक्ष हो, पर यह तुम्हें अवश्य मिलेगा। लेकिन यदि तुम मोक्ष का स्वरूप ही तय करने में रूढ़ जाओगे और राग द्वेष से रहित बनोगे तो यह निश्चय समझना कि तुम्हारा मोक्ष नहीं होगा। तृष्णा का त्याग और राग द्वेष पर विजय करने में ही तुम्हारा भविष्य उत्तम है। 'इस प्रकार भ० बुद्ध ने सब धार्मिकों से दूर रह कर मत मतान्तरों के सब गगनों का अन्त किया था।

विचार से कार्य श्रेष्ठ है

एक बार भ० बुद्ध के अन्तर्वासि गिण्य आयुष्यमात् आनन्द ने भ० बुद्ध से पूछा कि "भगवन् ! ईश्वर है या नहीं ? है तो कैसा है ? सृष्टि ईश्वर ने बनाई है या अनादि है ? इन चर्चास्पद प्रश्नों पर आप प्रकाश क्यों नहीं डालते ?" तब भ० बुद्ध ने कहा— 'आनन्द ! किसी पुरुष को तीर लग जाय और कोई वस्तु उसकी चिन्तना करने जाय तो उस समय वह वस्तु उसका तीर निकाल कर मलहम पट्टी करने के बदले और उसके बहते हुए रून को बंद करने के बदले यदि वह इसकी जाँच करे कि तीर किसने मारा ? किसने मारा ? किस दिशा से आया ? मारनेवाला काला या सा गौरा ? तो तुम उसे मूर्ख, कहोगे या बुद्धिमान ? ऐसा जाँच करने के उपाय तो उस समय उसका रून बंद कर मलहम पट्टी करना ही उपाय है। इसी तरह है आयुष्यमात् आनन्द ! ईश्वर, सृष्टि मोक्षादि की कोश चर्चा करने में तो मनुष्य का तृष्णा तीर निकाल कर उसे दुःख मुक्त होने का मार्ग बताना ही श्रेष्ठ धर्म है।

महात्माजी ने भी अपना आश्रम के ग्यारह व्रतों में साम्प्रदायिक कलहों में निरथक बंध होता हुई अपनी शक्ति को बनाने के लिये स्वधर्म समभाष का समानेश किया था। वे भी कहते रहते थे कि किसी भी धर्म की निंदा क्रिये बगैर उसमें रहो हुई अच्छाईयों सक्षय प्रवृत्त कर लेनी चाहिये। इस दिशा में भा दोनों के दृष्टिकोणों में समानता थी।

धर्म का उपदेश क्या ?

भ० बुद्ध यह मानते थे कि जब तक मनुष्य की अज्ञानता का प्राथमिक आवश्यकता पूरी न हो तब तक नीति, धर्म या आध्यात्मिकता चाहे कितना उँचा उपदेश क्यों न हो, उसके गले नहीं उतारा जा सकता। मनुष्य के घेरे का खड्डा जब तक नहीं भरता तब तक वह स्थिर चित्त होकर कुछ सुननेवाला नहीं है। इसलिये पहले अज्ञान चाहिये और फिर ज्ञान प्रेषा उनका मानना था। जैसा कि उनके इस एक प्रसंग से स्पष्ट हो जायगा।

एक बार भ० बुद्ध आल्मी गाँव में एक दरिद्र, परंतु नम्र मनुष्य का योग्यता देख कर वहाँ जाये। बुद्ध आये, यह सुनकर वह दरिद्र मनुष्य को भी धर्म के दो गोल सुनने की इच्छा हुई। मनुष्य दुभाग्य से उस दिन उसका एक बैल वहीं भाग गया था। उस बैल को ढूँढ कर ही धर्मोपदेश सुनने का तय किया। बैल ढूँढ कर लौटने का समय हो चुका था। खाना-पीया कुछ नहीं था। वह लंगर की लंग गद्द थी। फिर भी वह घर नहीं गया। वह बुद्ध के पास आया। बुद्ध ने उसकी श्रुति वेदना को सुनकर उसकी खाने की व्यवस्था की, जब उसकी भूख मिटी तब तक तब बुद्ध ने उसे चार आय सत्य का उपदेश किया। तब वह दृष्टि मित्र उठी और वह भी बौद्ध भिक्षु बन कर चला गया।

भूय महान् रोग है

भित्तुओं में इस प्रसंग की कुछ चर्चा सुनकर बुद्ध ने कहा—'भित्तुओं यह सुनइ स जपने बैल को खोजने के लिये जंगल में मारा मारा किरा है, और वहाँ में साधा मरे पाम आया है। ऐसी दशा में मैं इसे उपदेश दूगा तो यह इसे रुचेगा नहीं। ऐसा समझ कर ही मैंने इसे भोजन कराया है। भूय राग के ममान दूसरा कोई रोग इस दुनिया में नहीं है। दूसरे रोगों को तो चिकित्सा द्वारा दूर किया जा सकता है पर भूय का तो रोग रोज उठकर त्रिक्रिया करना पवती है। इसलिये भूय एक महान् रोग है। 'त्रिषण्ण परमा रोगा' और बुभुक्षित न प्रतिभानि किंचिन्' आदि जा मूत्र वाक्य कहे गये हैं व भिन्नकुल यथार्थ हैं।

महात्माना ने भी जब हिंद में करोड़ों मनुष्यों को भूय प्यासे और वस्त्ररहित देखा तो उ होने भा यह समझ लिया कि भूय का रोग दूर किए बिना नैतिक उत्थान या धार्मिक भावनाओं का जागृति होना अनक्य है। इसको दूर किये बिना दूसरा कोई भा उद्धार का मार्ग उनके गले नहीं उतर सकता। इसलिये उ होने भा करोड़ों मनुष्यों का अत्र मिले ऐसे उपाय खोजे। गृह उपयोग और चरम्य का प्रचार किया। और इन सब दुखों का मूल कारण राजकीय पराधीनता को दूर करने में धरना जावन समपण किया।

चान में गांधीजी का स्थान

इस तरह कर एक बातों में बुद्ध और बापू में समानता दृष्टि गोचर हाती है। इसलिये चाना लोग बापू का जाविन बुद्ध या महाबोधिसत्व मानते हैं। १९४५ मारती (शांति निकता) क चीनी प्राचार्य तानयुन शान ने एक बार गांधी जपती के प्रसंग पर कहा था कि हिंदवाधा गांधीजी को

महात्मा समझते हैं, और पश्चिम के लोग उनको हिंदी मत या योगी कहते हैं, पर चानी लोग तो उनको जीविन बुद्ध या महाबोधिसत्व के रूप में समझते हैं। गांधाजी के प्रति चीन में बड़ा गहरा मान और प्रेम है। हिन्द में तो गांधाजी के पक्ष या विपक्ष में टीका भी सुना जाती है, पर तु चीन में तो उनके प्रति केवल मान और प्रेम ही है। और वह मान और प्रेम ऐसा है जो सर्वथा शुद्ध और निर्मल है।'

बुद्ध और बापू की इस पुण्यतिथि पर उनके उद्देश्य तथा जीवन प्रसंगों का याद कर उनका अनुसरण करने का हर एक को प्रयास करना चाहिये। इस में उनकी सफलता भी है। आज जब कि सत्तार पाशाचिक सत्ता में पसता चला जा रहा है, तब यदि विश्व को कोई उबार सकता है तो वे हैं बुद्ध और बापू के अहिंसा प्रेम, शांति तथा बलिदान के अमर स रस। इनके द्वारा ही दुनिया का प्राण हो सकता है।

[चैत य योगाधम, बम्बई का तरफ से
 आयोजित सभा में दिया गया प्रवचन]

पुण्य श्लोक गांधीजी

पुण्य कीर्ति पावू

केवल निर्मल पुण्य ही विनया काल रहा है, एम महात्मा गांधीजी के विषय में आप में कुछ कहूंगी ।

जीना में जयती

राम, कृष्ण या बुद्ध इतु या मोहम्मद जिसा भा महापुरुष की जयती उनके जीवन-काल में मनाई गइ हो, एमा इतिहास से ज्ञात नहीं होता । परन्तु महात्माजी का जयता तो इनसा मौजूदगी में केवल एक दिन तक ही नहीं, एक एक मस्ताह तक मनाई जाता रही है । और वहा सिलसिला आप भा चल रहा है । निस्सन्देह यह बान ऐसा है कि जो सहज ही दिल म रिस्मय उत्पन्न कर दती है । भला, ऐसी उ में क्या विगैपना या चादों के बीच गांधीजी

पितृ भक्त राम और माता के रचयिता कृष्ण के जमाने म सवथा भिन्न जमाने के महात्माजी एक विरले कर्मयोगी और युग पुरुष है । राम ने तो रावणादिक राशों का और कृष्ण ने कसादिक दुष्टों का नाश कर घर्म सस्थापना की थी, परन्तु गांधीजी ने तो प्रायः प्रत्येक मानव के मानस में उत्पन्न हुए सैकड़ों कर्मों को—साम्राज्यवाद, पूजावाद, जातिवाद, यज्ञवाद, ब्रह्मवाद और इसा तरह इम्पीरियलिज्म, इण्डस्ट्रीयलिज्म, नेशनलिज्म और बोल्शेविज्म आदि आदि जो कि मानव हृदय पर आधिपत्य कर बैठे थे और जो जगह जगह खून का नदिया ब । रहे थे उनको दूर करने में ही—उाके संज्ञों में निव को विमुक्त करने में ही अपनी सारी शक्ति खर्च की थी ।

चरसे का नाद

राम ने सीताजी को रावण से छुड़ाया और कृष्ण ने द्रौपदी का रत्न का-पाल रक्षण के लिये चीर बनाया। परन्तु गांधीजी ने तो कंगोठों हिटू माताओं की लाज टकन और भूय मिथाने का शडा उठा कर हिन्द के सडि सत गान्ध गांधी में फिर से एर बार चरसे का नाद बगाया और भी में अपनी जिन्दगी का अधिक भाग गुजारा था।

राम के हाथ में धनुष राण थे आर कृष्ण ने पास था सुदर्शन चक्र, जिसका उपयोग वे स्वय ही कर सकते थे। परन्तु गांधीजी का धर्म प्रवर्तन चक्र चरसा, तो ऐसा अनोखा चक्र था कि जिसका उपयोग आयाल-वृद्ध सर दार्द बेधडक कर सकते थे—कर रहे हैं। कृष्ण के चक्र की तरह यह सशरक नहीं, करोड़ों का जसदाता-मर्जक मिद्ध हुआ है। इसके चकाने से रक्त की धारा नहीं निकलती, गात्र के अचल में से निकलनेवाले निमल दूध का तरह ही इस चक्र में से भी जीवन रक्षक शुद्ध श्वेत रक्त के तार निकलने हैं। इसमें स देश नहीं कि हिन्द की करोड़ों जनता को ऐसा अहिंसक शस्त्र मँ कर मत्माजी ने मरणो पुण्य प्रजा में गतो मेव और नर प्राणों का सचार किया था।

कृष्ण और गांधी

कृष्ण ने तो केपठ मुद्रामा को ही गरीबी स मुक्त किया था, परन्तु इस युग के गाहन ने—गांधीजी न तो कोटि-कोटि जनता को दरिद्रनारायण का पद देकर उनकी सजा और सुभूषा करने में ही अपना मयस्त्र अर्पण कर दिया था। कृष्ण गेल ही खल में मालिन चोर बने थे। परन्तु गांधीजी वो अरने देश वासियों को सत्य कम में निर्भयता सिन्वाते के लिये खुडे आम नमक-चोर बने थे। एरू की तो बाल लीला ही थी, पर तूमे में था सत्य और स नय पद प्रतिष्ठा का उच्च उरमाद !

सतयुग का माहा बशी का रक्षा रमिया था, जो अपना बचा की धरानि से गाव का दूध पीते हुए बच्चों को जोर हाथ में रखी लेकर दूध पिलाती हुई गोबर ललनाओं को शकुल किमा करता था। पर तु इस युग के मोहन न ता 'यग इदिया' नव जीवन' और 'हरिजन' द्वारा दुनिया भर व मानवों पर अपनी अन्नव मोहिनी डालकर अमरत्य गर नारियों को मानव दित के लिये शकुल कर दिया। उन्होंने साम्राज्य दियों के सिंहासन क्या दिये थे, यत्रवाद के पाये दिला दिये थे और गुलामी के बंधन ढाले कर पेंक दिये थे।

चापू क पाण्डव

महामारत क युद्ध में कृ ण के साथी धर्मात्मा पाण्डव थे, ना अतुल पयत्रम होने पर भी धर्मवसयण थे। गांधीजी के सत्याग्रह सप्राम के साथी भी धर्मवस्र की तरह सरहदा गारी, धर्मनाश्र धुर वर जतुल कलाम जाणाद सौजयमूर्ति सजेद्रप्रसाद, भाम की तरह सादार पण्डेज और अर्जुन की भाति प नेहरू रहे हैं, जिनके पीठ कइ अ मोहिनी सत्याग्रही शात सैनिकों का कतारें लगी रहनी थीं। ये भैतिक पिये र ना विनाश करने के लिये नहीं, पर सरजफ के तीर पर य, सहार करने के लिये गई, पर रज्जु करने के लिये थे। युद्ध को उत्तेजित करने वाले नहीं, पर शात करने वाले थे। वही आज इस नूतन युग क सर्जक—अग्रगामी बने हुए हैं।

क० युग नहीं, कर युग

कृ ण सतयुग में ज मे रे और गांधीजी 'कलयुग' में। लेकिन कलयुग को सत्य युग बनाने का भगवतय काम उ होने उठाया। कल यानी क० और कलयुग याना यत्र का युग। इस विनाशकारी यत्रयुग ने जात लाखों दलने, पाखने और बुनने वालों की जाआनिका डीन ली है औ

प्रजा का भक्षण किया है। प्रजा के सत्त्व का प्राणण कर उसके नूर को नष्ट कर दिया है। इस कलयुग ने ही मानव-जाति को सत्त्व हानि बना दिया, ऐसा आज सत्र समझने लग गये हैं। कलयुग को 'कर युग' बनाने पर ही सत्य-युग का जन्म होता है। कल यानी यत्र की जगह 'कर यानी इस्तोद्योग का साम्राज्य स्थापित करना सत्य युग को प्रस्थापित करने का राज मार्ग है।

गृहोद्योग से विद्व-शांति

महात्माजी ने जब स्वराय के साथ साथ गृहोद्योग की बातें कहनी शुरू कीं तब कश्चों को आश्चर्य हुआ कि 'यह तो दुनिया को बैलगाड़ी के युग की तरफ ले जाने की बातें हैं।' परन्तु आज वही दुनिया अपनी आँखों के सामने यत्रवाद और विज्ञान का परिणाम विद्व युद्ध और आत्म विनाश के रूप में दख रही है। अब महात्माजी की विचार धारा के पाठे रहे हुए इस सत्य का आभास दुनिया को भी होने लगा है कि विद्व शांति का सच्चा उपाय और अहिंसा इस्तोद्योग को प्रधानपद देने वाली समाज-व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था में ही समाई हुई है।

चरते में निभयता

गांधीजी के धर्म चक्र चर्खे का चमत्कार तो देखिये, जिसको रणिया या अमेरिकन वन स्पर्श तक नहीं कर सकते। यत्रवादी मिल-मालिकों के हृदय जहाँ रात दिन बम्बार्डमेंट के भय से धडकते रहते हैं, वहाँ चर्खों चलाने वालों को न कोई चिंता रहती है और न किसी तरह का भय ही। उन्हें तो यह विश्वास होता है कि दो-चार रुपये कीमत वाले चर्खे पर कौन ऐसा मूर्ख होगा जो हजारों की कीमत वाला वन फेंकने का विचार करेगा? इस प्रकार चरले को आधुनिक युद्ध और अनेक तरह के शस्त्रास्त्रों के सामने अभेद्य कवच अथवा ताचीज बनाकर महात्माजी ने यत्र-युग को परास्त कर दिया।

विजय का अस्त्र अहिंसा

राम ने हिंसक शस्त्रों द्वारा रावण से युद्ध किया और कृष्ण ने शस्त्र-धारण न करते हुए भी सारथी बनकर युद्ध का मार्गदर्शक और प्रेरक बनना स्वीकार किया था। भगवान् महाभारत के तो हिंसक शस्त्रों को चुभा तक नहीं था और न किसी हिंसक प्रवृत्ति के मार्ग दर्शक या प्रेरक ही बने थे। बटिक उड़ोने तो 'मा हणा मा हणो' का गभीर स्वर ही गुञ्जित किया था। यहाँ तक कि जब उनके प्रथम भक्त चंडा राजा ने भी हिंसक वृत्ति स्वीकार की तब उसका भा उड़ोने प्रतिकार हा किया था। इस तरह आज के युग में गांधीजी ने भी राजकाय और अय मभी धर्मों में अहिंसा को आगे बढ़ाया और कहा कि 'हिंसक शस्त्रों से कभी विजय होनेवाली नहीं है। अहिंसा ही विजय का एक मात्र अमोघ अस्त्र है।' लड़ाई करने वाले देशों का भी व अन्त तक यही स देण सुनाते रहे थे।

महात्माजी के इन सन्देश को भले हा आज सत्ता के मद में मत्त बने साम्राज्यवादा कद्र न करें, परंतु अ त में तो मेरा विश्वास है कि इन राजमार्ग की धरण लिये बिना दुनिया का भला नहीं हो सकेगा।

शुने अपन शि यों को उपदेश देते हुए गिरिप्रवचन में कहा है कि 'कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो तुम दूसरा गाल भा उसरे जागे कर दो।' महात्माजी ने तो अपन सत्याग्रही सैनिकों को इससे भी आगे श्प कर यह कहा कि 'कोई तुमपर लाठी उठाये तो तुम उसके सामने अपना मिर कर दो।' और उसको साव ने इन लिया हो तो तुम अपन मुह से उसका जहर चूम ले।'

मौजदगी में अनुयायी

यह सच है कि ऐश अहिंसा का अनक विधि दान को गांधीजी को हुआ था उसमें शाल्त्वाय के ललों का भा अनर था। उन्होंने अमे-

रिक्त श्रेष्ठक पारो मे भी मविनय का नून भग का गट सीखा या लेडिग
 गल्सय और पारो दोनों हो नर चिनक अरने प्राप्न सन्ध को पूरी तरह
 समल में नई ल गये थे जब कि महात्माजी का चिन्तन और वर्तन
 समुक्त बन गया था । महात्माजी ने अहिंसा को विचार त्वाचार, आचार
 और पचार में इस तरह समाप्त कर दिया था कि समस्त समाज के कोने-
 कोने के विचरन मनुष्य इनके प्रति आकर्षित हो गये थे । यह एक
 ऐतिहासिक सत्य है कि गांधीजी की मौजूदगी में ही उनके अनुश्रितियों की
 जितनी अधिक भया दूर थी उननी अधिक सख्या किमी भी युग के महा
 पुंस्य की मौजूदगी में उकरे अनुश्रितियों का नहीं हद ।

युग प्रवर्तक धारू

स्वीडनाथ टैगोर भारत की विभूति और निर कवि थे । वे पापीन
 श्रितियों की अक प्रतिमूर्ति थे । उन्होंने भी कहा था कि 'मैं ही मैं
 जाने समर का महाकवि होऊ पर तु त्वाहमाती तो अपने युग के बड से
 बड युग प्रवर्तक हैं ।' इस प्रकार सूची लकणी पैला दह सरा मानव — ब पू
 सबसे बलिष्ठ गकन । दुनरा के तिम कोने में जात तक राम, ण,
 बुद्ध या इशू का नाम नहीं लिया गया उस कोने में भी महा नाग का
 नाम आज बडे प्रेम से लिया जा रहा है ।

जो करक पुण्य ही जिनकी कर्ति रहा ऐसे महा माजी के जान
 सदेश का आज सर्वत्र पाग्य हा और जिन पथ के पथिक बन व उ होने
 हमें मुक्त होना मिल्वाया उमा पथ पर समस्त समाज चलकर मुक्त बन, ।
 मेरा मानना है ।

स्वामी विवेकानन्द

भारत महापुरुषों की रान ।

भारत के नरभेद स्वामी विवेकानन्द के नाम से कौन अपरिचित होगा ? वे एक घम घनारक और लज्ज सुभारक महापुरुष थे । उनके सुखा वेद में अर्थ श्रुति-मुनियों की विमल-वाणी श्रुति-स्नात की तरह प्रवहित होती थी । इन्होंने दस भारत महापुरुषों की खोज की । समय समय पर यहाँ एक के बाद एक महापुरुष होते ही आये हैं । कर्मवीर कृष्ण नरवाण राम और बुद्ध, शंकरानार्य और रामानुज जैवन्म महाप्रभु और तुलसीदास कबीर, नानक और गुरु गोविन्द सिंह जैसे अनेक नररत्न भारत न दुनिया को दिये हैं । इनके बाद रामकृष्ण परमहंस स्वामी रामानन्द और स्वामी विवेकानन्द का जमाना आता है और फिर गांधी-मुग की शुरुआत होती है, जिनमें कि हम अभी जी रहे हैं ।

अमेरिका में स्वामीजी ।

आज जिन महापुरुष का जयंती हम मना रहे हैं वे एक भावु पुरुष थे । उन्होंने यूरोप और अमेरिका में आकर हिंदू धर्म की ध्वजा फहराई थी । ३ नवम्बर १८९३ में जब अमेरिका के चिकागो शहर में विश्व धर्म परिषद World's parliament of religions हुई थी, तब स्वामी विवेकानन्द हिंदू धर्म के प्रतिनिधि बनकर वहाँ उपस्थित हुए थे । विश्व के छान क्षेत्र में अनेक धर्मों के प्रमुख विद्वान् प्रातिनिधिकता वहाँ आय गे । स्वामीजी ने जब हिन्दू धर्म के विषय में बोचन को कहा गया तो प्रारंभ में स्वामीजी को कुछ झलक ला हुई कि मैं यहाँ इन धर्मपर

विद्वानों के समक्ष और वह भी विदेशी भाषा में अपने दि प्रथम के उत्तमान को कैसे समझ सकूँगा ! लेकिन फिर भी हिम्मत करके खड़े हुए और बोले—

“Sisters and Brothers of America—अमेरिका के बहिनो और भाइयो !” इतना कहते ही तालियों की गणगणहट शुरू हो गई। क्यों-कि उस दे। में ऐसा कहने का रिवाज नहीं है। वहाँ तो बहिनो और भाइयो के बदले Ladies and Gentlemen (डेडीज़ एंड जेंटलमैन) कहा जाता है। अतः स्वामी द्वारा बहिनो और भाइयो का विषय संबोधन सुनकर उन्हें पट्टा खु। हुआ। इस देखकर स्वामाजी का उग्राह दुःखना बढ़ गया और फिर तो उन्होंने घण्टे तक ऐसा प्रभावशाली प्रवचन किया कि विश्व न केवल अमेरिका के ही विद्वान् बल्कि सारा दुनिया के विद्वान् आत्यन्त निश्चित हो गये। देश विदेश में उनका प्रभाव का यह पहला ही मौका था। लेकिन फिर तो उन्होंने लम्बे समय तक यूरोप और अमेरिका में रहकर दि प्रथम का प्रचार किया और उनकी क्रांति पर स्वयं-कृत्य चलाया। उनका अंग्रेजी भाषा पर इतना अधिकार था कि अंग्रेजों और अमेरिकियों को भी उ के सामने अभित होना पड़ता था। आज भी उनकी वह भावस्वी भाषा उनके प्रथो में सुरक्षित है।

उनका भाषण :

इस नये बाद भी उनके भाषण पढते समय विलकुल नवीन-से लगते हैं। उनमें ऐसा अनोख प्रेरणा भरी दृष्टि थी कि पढने वाले की सुस-केतन जगृत हो उठता है। बोधे हुए के जग देने और प्रकृत को गतिमान् बनाने जैसा प्रकृत भाषा उनका भाषणों में दृशान्वर होती है।

अद्भुत स्मरण-शक्ति :

उनकी स्मरण-शक्ति भी विश्व-जनक थी। ‘एण्ड मायस्त्रेपीरिफ्लिऑक जिटागिटा’ जब वे पढ रहे थे, तब उनके एक भक्त ने उनसे पछ

स्वामीजी आप इतना बड़ा भय तो पट रहे हैं, पर क्या पूरा याद रह जायगा ? स्वामीजी ने कहा 'ओ, यह पुस्तक और पूछ कर देख लो।' मक ने एक विषय पूछा और स्वामीजी ने अन्वय देना ही जैसा कि पुस्तक में लिखा हुआ था अवगती कह सुनाया। केवल एक बार पढ़ने से ही याद रह जाय ऐसी मात्र का स्मरण शक्ति देल कर मक के आश्चर्य का पार न रहा। उनमें पूछा एही स्मरण शक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है। स्वामीजी ने कहा— अल्ट्रा ब्रह्मचर्य से। उनके ब्रह्मचर्य के तंत्र से बड़े बड़े मनुष्य भी चकित हो जाते थे। अमेरिका की स्त्रियां तो उनके पीछे पागल हो फिरा करती थीं। 'सिस्टम निवेदिता' तो उनका नामा से ही आकर्षित हो सवा करन के निमित्त भारत में आकर बस ई थीं।

स्वामीजी के गुरु

१११

सन् १८५७ में जब भारत में विद्रोह हुआ था तब कद एव विद्रोहियों ने मकर के मय में साधु थे। भारत का लिया था और दूर उधर फिरो लग गये थे। पुलिस उनको पकड़ने के लिये कई बार लगे साधुओं को मार गिरा कर लेती थी और नादक उन्हें प्रभवम ह्यान भी करती थी। एकबार एक सच्चा साधु जा कि १४ नाउ में भी मारण किय हुए सात्विक जीवन व्यतात कर रहा था, पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया। पुलिस ने उसे खूब पूछत छ की, पर गीन हान का वजह ने उन्को कुछ जवाब नहीं दिया। तब पुलिस ने समझ लिया कि यह तो कोई विद्रोही ही साधु बन कर बैठ गया है और अब बचने के लीतिर मौन धारण कर दोग कर रहा है। पुलिस ने अपनी तलवार निकाला और उमका छाता में भोंक दा। कि क्या था ? मौत के उन अन्तिम क्षणों में पर अपने चौदह साठ के मौन क मन्त में भा उम साधु के मुखा त्रि में "तत्त्वमसि" ये दो शब्द ही निकल। अर्थात् उनसे पुलिस का ही यही कहा कि तुम

ना उन परमात्मा के स्वरूप हो उन में लिये तो पूर्य हा हो ।' इस अद्भुत गान का मेरू और उदात्त चरित साधु पुरुष ही स्वामी विवेकानन्द का आदर्श पुरुष था । जिसने ऐस महान् आदर्श की साधना अपने ज्ञान में की हो उसका जीवन किन्ना पाना रहा होगा, इस संध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती ।

भारता पाप है

इमजोग और भीस्ता स ठहें अलन्त घृणा थी और यह जनक ज्ञानों से स्पष्ट रहिर होता है । निर्भक्ता और भीमता की ही य सब पापों का मूठ समझने थे । उन्होंने कहा है— Strength is life weak-ness is death, fear is root of sin यस्तुत निर्भक्ता और भयभीत को लेकर ही सब पाप उत्पन्न होते हैं । शक्ति और निर्भयता प्राप्त करना हा मानों जाध्यात्मिक पथ पर अप्रसर होना है ।

दरिद्र-नारायण की सेवा

दरिद्रनाशन शब्द का प्रथम सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द ने ही किया था । मानव-सत्ता में ही पशु पूजा का समाव । होता है ऐसी दृष्टि अन्दा में से हा इस उद्देश का प्रादुर्भाव हुआ था । वे कहते थे कि—

I am ready to undergo a hundred thousand rebirths to save up a single man—एक मनुष्य के उद्धार के लिये यदि मुझे हजारों जन्म भी लेने पड़ें तब भी मैं थकना नहीं ।' गरीबों के प्रति सहानुभूति रखना यहा मानव का सब प्रथम धर्म है । ऐसी उतावला कदना ही नहीं, समझना भी था । बैरूर मठ के बगीच में जब मजदूर काम पर जाने थे एक दिन स्वामी जा उठे पास जाकर बैठ गये और उनसे वार्ता करने लगे । वे हर एक से पट्टे लय कि तुम्हारे घर में गारदी

कितने हैं ? काम पर कितने जाते हैं ? क्या मजदूरी मिलती है ? गुजारा कैसे चलता है ? रहने के लिये घर कैसा है ? बाउद्ध पढ़ते हैं या नहीं ? घर के खादमियाँ में परस्पर मतभेद कैसा है ? आदि बातें वे पूछ ही रहे थे कि इन्हीं में एक स्वामी ने आकर कहा, स्वाधीनी कलकत्ता के एक घनादय श्रीमंत अपन मित्रन आय हैं । मरु स्वामीजी न इस बात पर ध्यान नहीं देना और अपनी बातें चल्ती हैं । दे पोरक इतवार करने पर भी बंगाली बाधु को स्वामीजी के ज्ञान नही हो सके । विषय है उहे वारिम लौक जान पडा । हर भी विवेकात् की गरीबों की बातें सुनन में और फिर उहे उन्नते का माग दयन कथने में पडा आ म उताप का अनुभव होता था ।

धर्म का मूल्य

एक बार स्वामीजी को कलकत्ता में नदी पार करने के लिये नाव में बैठने का मौका आया था । उस समय उनका एक बड़े शिष्य न ब बाले से कि गया तय करने लगा । नाववाला है उगा गाता था और वह चार आन देने का कह रहा था । इतने में ता स्वामीजी बीच ही में बोल उठे कि भाइ ! इनके साथ नहीं भवतव दिय जाता है ! यह है मना मांगता है तो हमें खुशा हो जाठ आना देना चाहिये ।

सच्चा धर्म :

एक और प्रसंग है ! एक बार दिनवादी पत्र के अग्रिम और 'दग की बात' नामक सुप्रसिद्ध बंगाली पत्र के लखक भायुव मन्नागम श्लेष टेउकक अपन दा मन्ना का लकर स्वामिजी व दग पत्र आय । स्वामीजी का जब यह मालम हुआ कि इन में म ए मन्ना पत्रारी हैं तो उनसे उन्होंने सर्वप्रथम पत्रार के दुष्काल का हाल पूछा, और उसक

लिये किये गये भ्रम तक के प्रयत्नों को मुक्त। इसके बाद उन्होंने उनसे शिक्षा प्रचार और समाज-सुधार संबंधी बातचीत की।

स्वामीजी ने विदा लेने समय उन पत्राक्षरी तारपत्र ने पढ़े सेदूर्ध्वक कहा— 'स्वामीजी, वेद-तन्त्री की जानकारी के लिये हम यहाँ आपकी सेवा में आये थे, पर दुर्भाग्य से जाने तो साधारण विषयों पर ही बातचीत की। आज का हमारा यह ज्ञान तो धर्म ही चला गया है।' स्वामीजी ने उत्तर दिया 'भाई जगत् के मेरे देश का एक कुत्ता भा भूखा रहता है तब तक उसकी खाना और उसकी पूरी मार मजाल व जना मेरा धर्म है। इसका भिन्न भूषण सब भ्रम है या छूटा धर्म है। दर्शन प्रयत्न ही नहीं रहता यह सुधार सत्य रह गये। लेकिन देखकर महात्मा के हृदय पर जो दुःख गहरा भ्रम दूर गिना नहीं रहा। उनके हृदय में तो स्वदेशाभिमान की भावना और गहरा जम गई।

सेवा में ही मुक्ति है

यूरोप और अमेरिका में हिन्दू धर्म का प्रचार का तो स्वामी विवेकानंद स्वदेश लौटे तब उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने भ्रमों के साधुओं को कबल मठों में ही नहीं बैठाना चाहिए बल्कि भिन्न भिन्न स्थानों पर परिचित कर स्वामी रामकृष्ण परमहंस का उदात्त सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिए। इसी उद्देश्य से उन्होंने स्वामी विवेकानंद की भावना पास बुलाया और उनके दाका में उपस्थित होने के लिये जन को कह। स्वामी विवेकानंदजी एकान्तधेनी और निश्चिन्तमय पुरुष। उन्होंने इस जगत् में पटना अच्छा नहीं लगा। अतः उन्होंने इस धर्म को उद्धृत हुए कहा 'स्वामीजी मैं दाका जाकर क्या उद्देश दे सकूँगा? मैं तो कुछ जानता नहीं हूँ!'

स्वामी विराराम ने कहा 'तुम्हें वहाँ जाना नहीं कुल नहीं जानता हूँ' यह उद्देश्य देता है। क्योंकि यही तो सबसे बड़ा उपदेश है। उपनिषदों में भी कहा गया है कि जो यह कहता है कि 'मैंने ज्ञान भी जाना नहीं, उसी को उमको जाना है।' परन्तु विज्ञानदर्शी हो हममें भी एतन्मय नहीं हुआ। उन्होंने तो अन्तम सब माय कह दिया कि- 'स्वामाजी, अभी कुछ समय तक प्रसन्न मुक्ति के लिये भर साधना करो हीजिए।' इतना सुनते ही स्वामी जी को राग आगया और उन्होंने जगत् क्षेत्र छोड़कर कहा- यदि तुम अधिकार प्राप्त किये बिना ही मुक्ति में जाना चाहते हो नरक में गिरे बिना नहीं गढ़ाग। यदि तुम्हें सच्चमुच मुक्ति पद प्राप्त करना हो तो दूसरों की सेवा-सुश्रूषा करो। यही सत्य से मान्य साधन है। फिर राग शांत होकर उन्होंने कहा 'काम करो बेदा, और उन मन धन से सेवा करो प्यार। इन्हीं मन भूयो यही मुख्य यस्त है। फल की आशा न रखते हुए जो दूसरों की सेवा करते हुए यदि तुम्हें नरक में भी जाना पड़े तो कोई डर नहीं। स्वार्थ सिद्धि के योगीभूत हो गिरे हुए स्वर्ग-सुख से भी ऐसा नरक सु दरकर है।' स्वामी विराराम ने इन्हीं बातों के बाद स्वामीजी की आज्ञा का पालन किया और उपदेश देना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार उन्होंने जन सेवा में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया। उन्हें बर जस उन्हें गारा सुदुग्धों में से किसी के बीमार होने की खबर मिलती तब व अपने भक्त डाक्टरों का उनकी मुक्ति के चिकित्सा काम का कह दिया करते थे।

नैतिक हिम्मत

उ में नैतिक हिम्मत भी गन्तव्य की थी। जन-सेवा का कार्य करते हुए अत्यास पने का आराधन नहीं किया ग सत्ता, जस से अपनी ऐसी

छोकींदा अपने ही शि शों द्वारा सुनते थे तब वे यही करते थे कि दुनिया चाह
 ला कह, पर हमने अपना कार्य करते जाना चाहिये।' एक बार जब वे
 अमेरिका में थे तब एक शिष्य ने वहाँ से लिखा कि लोग आश्चर्य
 हमारे जो की ही नहीं, हमारा भी प्रत्यक्ष टाका क्या लगे है। इसका
 उत्तर देते हुए स्वामीजी ने लिखा था--'हमारी लक्ष्य निंदा विशालकाय
 शक्ति के लिये चींटियों के उरु जैसा है।'

स्वामीजी की भविष्यवाणी

आज से ५० वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने विश्व पर कही गी
 वे पाश्चात्य-संस्कृति के नियम जो भविष्यवाणी की थी वह आज
 केवल सत्य गती हो रही है। उन्होंने कहा था--

The whole of western civilization will Crumble
 to pieces in the next fifty years if there is no spiri-
 tual foundation अर्थात् पश्चिमी संस्कृति यदि अपनी नींव में
 आध्यात्मिकता का पाया नहीं डालगी तो ५० वर्षों में उतकर टूटने टुकड़े
 हो जायगी। यही बात उन्होंने दूसरी जगह भी इस प्रकार कही है--

Europe the centre of the manifestation of mate-
 rial energy, will crumble in to dust with a fifty
 years if she is not mindful to change her position,
 to shift her ground and make spirituality the basis
 of her life

जो उपरोक्त स्वामीजी द्वारा कही गयी बात को ध्यान में रखते हुए
 हमें उपरोक्त स्वामीजी ५० साल पूर्व कही गयी बात को सुना चुकें।

It is hopeless and perfectly useless to attempt to
 govern mankind with the sword मानव समाज पर तलवार
 के सहित साम्राज्य जमावण प्रयास करना निष्फल और निराशाजनक है।

एक सुख क्षण और दुख रूप है। प्रत्येक एक सुख, सुख को जानना 'अपन माय साथ दुख को भी लेकर आती है, यह बात स्वामीजी कहते हैं—

Every ounce of pleasure brings its pound of pain ' यानी एक अश मात्र सुखोपभोग भी एक पाँच दुख को लाता है।
कथनी या करती

आज का अनुभव बनी बड़ी रात करता तो जानता है, पर आचरण में उमड़ा गया। भी नहीं उमड़ता। मन भर कहने से मन भर आचरण करना आवश्यक है। स्वामीजी ने भी कहा है—

An ounce of practice is worth than twenty thousand tons of talk

श्रीमद् हज्जाम् उन उपदेश देने के बल एक औंस आचरण में लाखों अक्षरों से अधिक है। इस तरह उठने अपने विविध उपदेशों द्वारा बनता सत्य मार्ग दिखाया था।

कर्म-शील सन्यास का आदर्श

स्वामी विवेकानन्द प्रारंभिक और प्रभावशाली सन्यासी थे। उन्होंने अपने मंत्र काव्य द्वारा धर्म को भी तज्जरी बनाया था। उन प्रत्येक सन्यासी किसी न किमा गकित की प्रवृत्ति में उभरा रहता था। स्वामीजी: किसी को भी काम दिना रहन नहीं दन थे। उन्होंने 'प्रभारत' नामक एक पत्र भी शुरू किया था जो आब भी चालू है जिसे आदि स अत तक मंत्र काव्य सन्यासा ही किया करते थे। स्वामी विवेकानन्द की इस जगता पर यदि हम उनका विविध आधुनिकवादी प्रयोग समझें तो अपने जीवन में उतारन का प्रयत्न करण तो हमारा अवश्य मंगल साधक हो सकेगा।

[स्वयं योगरत्न, घाटकापर क तत्त्वार्थान में मनाइ गई विवेकानन्द की जल्दी प्रयोग पर दिया गया प्रवचन ।]

तिलक श्रद्धाञ्जलि

वे जीवित हैं :

आज अगस्त की पन्नी तारीख है और यन् शिक्क भद्राञ्जलि का दिवस है। उनका अवधान हुए २९ वर्ष हो गये हैं, फिर भी उनका चरण शिदुन्ना नरान ही दिगाइ दना है। श्रद्धाञ्जलि का अर्थ है श्राद्ध पिरम। और श्राद्ध का मतलब है श्रद्धा द्वांग भूतकाल को जीवित करने का अपूर्व उपाय। लक्ष्मणाय वा देवांग हुए इतना अन्ना हो गया पर हम अब भी उनसे प्रणाम प्रान करत हैं—पूर्वि त्त हैं और अन्नाड मना मन की लीभा अगाधार करत हैं। इस प्रकार हम उन्हें मर बाग पर भी अपना म ब गित पात हैं।

महापुरुष जब तक अपना शरण से जीवित रहत हैं तब तक वे अपने प्राणों के चरण पर भी जीवित रहत हैं। रुद्रिन जब वे पल जान है तब वे अपना अन्नाञ्जलि के चरण पर जीवित रहत हैं। फिर उ के अनुयायियों में बिना प्राण लेना है उनना ही मन। जीवन मी होता है। लक्ष्मणाय वे जनता के दिल में जो जीवित संचार किया है वह जब तक जीवित रहगा तब तक वे भी अमर बने रहेंगे।

सच्चे लक्ष्मणाय

लक्ष्मणाय की दाम्पति, निश्चयता और धृदावस्था में भी काम करने का उपाय आदि गुण आज के नवयुवकों के जीवन निर्माण के लिए बड़े ही अनुकूलगाम्य हैं। उनके इन गुणों से ही उनकी प्रसिद्धि शिदुन्ना के एक कोण से दूसरे कोण तक फैल गई थी। एक बार, जब कि

काठकर साधुवेग में थे और कामार का भ्रमण कर रहे थे, तब एक अनपढ़ ब्राह्मण किसान ने उनसे पूछा "स्वामीजी, आप किससे प्यार करते हैं?" काकासाहब ने कहा "बम्बई से।" किसान ने पूछा, "बम्बई क्या लखनऊ के पास है?" उस बेचारे का भूगोल ज्ञान यही तक सीमित था। उस कृपा भावमयी किसान ने कहा "उसने फिर आगे बताया हुआ है, 'स्वामीजी आपका गाँव क्या है?'" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "महाराष्ट्र का ब्राह्मण।" इतना सुनते ही वह चले बोल उठा "तब महाराष्ट्र क्या तुम्हें, क्या थापने कुछ पता है?" बम्बई लखनऊ के पास होगा जमा किसान भौगोलिक ज्ञान का वह भी जतना तो जानता है या कि तब महाराष्ट्र महाराष्ट्र का ब्राह्मण - का देश के मातृ तरकार से उठ रहे हैं और सरकार ने - जल में डाल रखा है।

लोकमान्य की छाप

एक बार दिल्ली में भारत मना साष्टम्य साहस जान हुए थे। उन्होंने लोकमान्य को मित्र के त्रिपुण्य। तब तब तब मिला तब तब तब तब उनका मान में तुल्य निकालना की सरकार ने मना कर दी। लेकिन जनता ही भक्ति सच के जोर से टकरा नहीं जा सका। जुर्रत तब निकाल पर भी दिल्ली तथा आसपास के गाँवों के हजारों लोग उनके दण्ड के त्रिपुण्य पर आकर खड़े हो गये थे। गाँवों के आदमी तब नमस्कार आपस में बात पर रहे थे कि 'आज पूना का राजा जान वाला है। सरकार उसका मुँह डरता है।' कर्ने का मतलब फल इतना ही है कि इस प्रकार तब तक जनपद लोगों पर भी लोकमान्य की छाप पड़ी हुई थी।

सार्वभौमिक स्वास्थ्य के लिए

लोकमान्य मित्र का मानना था कि सौं मन का मुँह बनाना ही और महान्य-शक्ति बनाना ही ना शरीर को मुँह बनाना चाहिये। ब्राह्मण

जाति में लम्ब लने से उनका निराह जा-भावस्था में ही कर लिया गया था। इनकी पत्नी का स्वास्थ्य अनस अधिक अच्छा था जिससे कभी कभी उनके मित्र इनकी पिल्लगी भी किया करते थे। लोकमाय का ऐसा स्वभाव था कि वह एकबार जिस काम के लिये हट सक-प कर लेने थ फिर उस पूरा किये बिना नहीं छूटता था। उनका जब अपने शरीर का सुख पुनान का पुन गार हट तर पूरी तरह से इस काम में जुट गये। इसक लिये उन्होंने अपने कलेज का अभ्यास मी छोड़ दिया और पूरा एक साल अपने शरीर का मजबूत बनाने में ही लगा दिया। उस वक उन्होंने किसी भी दिन कोई किताब उग कर नहीं पनी और सुबह गान हर समय शाराम का ही गिखण लेन रह। हमसे उनका शरीर मनीला और निगम हो गया था। वृद्धावस्था में मा वे बिम हिम्मत क साथ काम कर सके थे यह इस प्रकार-स्वास्थ्य का और व्यायाम शिखा का ही प्रताप था। त्रिनेत्र, दामि आदि ग्रन्थों में उनकी विशय श्रद्धा नहीं थी। दली व्यायाम से ही शरीर मजबूत बनता है, एसा ही वे मानते थे। इसके लिये उन्होंने अपने घरमें ही अपने पुत्रों के लिये सब सुविधाएँ कर गयी थी। व्यायाम क विषय में लोकमाय को इ नी अधिष्ठ अभिप्रायि थी कि उ जल में स मी डर अपने वर पत्र लिखन थे तर उनमें जपान गहरी को व्यायाम करने की सूचना किया करते थे। प्रनिशिन उद्धने किताबों में हैं करते ह, यह भी पृछा करत थे। आप के सुनिवर्गिण की डिधा पाग बाल हमेशा कमचार और दीमार रणो जाते भाइ बहिना को इस उग-रग म शिखा प्रदण करनी चाहिये। उह यह समझ लेना चाहिय कि मात्र ज्ञान के विद्वित होन से ही काम नहीं चलेगा, शरीर स्वास्थ्य भी सुदृढ होना जरूरी है। बुद्धि पूरा उठ जाने पर मा शरार के अभाव रण न कोई फाय मिद्ध तरी से सकगा। अत शरार स्वास्थ्य भी जरूरी एक है। यूगर के दशों में स्वस्थ शरारों को इनाम दिये जाते हैं और उगक आरोग्य की परीक्षा ली जाता है। हमारा उग म भी उग शरार का प्रचार होना चाहिये।

श्री लोकमान्य के जीवन प्रसंगों में बहुत कुछ जाना समझा जा सकता है। उनमें से कुछ-एक प्रसंग यहाँ कह जाते हैं।

दुःख में धीरज :

इ० सन् १९०२ ई में पूना में बहुत जागेंस जेग पैला हुआ था। उस समय जे मान्य शहर में बाहर एक शौचालय म रहत थ। लेकिन यहाँ भी जेग ने उनका पीछा नहीं छाग और अन्तमें उनके जन्म पुत्र शिवाय को, जो कि बड़ा बुद्धशाली सुवरु था और पशुसन काल में पढता था, उसका शिकार होना ही पडा। उी मप्ताह में लोकमान्य क चचरे माद और एक मानवी भी प्रा के शिकार हो गये। इस प्रकार एक के बाद एक मुगीबन आनी गई, पर तिलक महाराज ने अपना धर्म नहीं खोया और शांति में सब मगन क्रिया। एते समय में मिशनाथ कतकर नामक उनक एक मित्रमान्त्रिना टन क लिय उनके प्राग गय। उस समय तिलक महाराज ने कहा— अर माद! गाँव की गोली में जम हर एक घरवात को उनमें छाना कण्टा डालना पडता है, पैस ही इसमें भी हुआ है। इस प्रसंग में 'दुःख नुद्धिगमन' जो शिवायस का लक्षण है उनक जीवन में स्पष्ट दिख्वाह पडा है। 'सुवेपु निमित स्पृह' यह लक्षण हम उनक जीवन में एक दूसर दृष्टा व ल जान सकेंग।

निस्यूह तिलक

तिलक महाराज क एक स्नेही मित्र ने बात ही बात में एक बार उनसे पूठा—'बलवतराज! जब स्वराज्य हो जायगा तब तूने अपन राज में कौनसा पद पसन्द करोगे? प्रधान मंत्री या परन्तः मंत्री?' इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा 'नहीं व माई! स्वराज्य हो पर तो मैं अपने स्वामी को मेरे मन्त्रि का श्रेण्यापक बनकर बैठ जाऊँगा। मुझ राज पाट चल चल नहीं चाहिय।'

हरिजनोद्धार :

विष्णु के समय में महाराष्ट्री ब्राह्मणों में छुआछूत का भयंकर मूतना हुआ था। वे हरिजनों की छाया तक अपन ऊपर नहीं गिरन दते थे। एष समय में उनके हाथ की चाय पीना और उनका घरों में बैठना क्या कम साहस का काम माना जा सकता है। अहमदनगर के हरिजनों ने जब लोहमन्य को चाय पानी का आमंत्रण भेजा तो उन्होंने बिना किसी सकोच के उसे स्वीकार कर लिया। उनका चाय पानी पी लेनेपर उन्होंने वहाँ के हरिजनों को संबोधित कर कहा 'भाइयो! ब्राह्मणों न तुम्हें नीच गिराया है, एसा समझकर तुम उनके प्रति द्वेष मत करना। वे धीर धीर अपनी मूल अवस्था सुधारेंगे। हरिजनों को अपेक्ष्य मानना चाहिये, एसा शास्त्रों में कहीं भी उल्लेख नहीं है।'।

उनकी सादगी और पवित्रता

उनका मन पवित्र और जीवन साध था। पवित्रता और सादगी ये दो एसे पक्ष हैं जिनसे मानव ऊपर उठ सकता है। आइकल मानव काम को कम करते हैं और उनका द्विगोरा अधिक पीतन है। लज्जित लोहमन्य एसे नहीं थे। वे बड़ सीध और सच पुरुष थे। बम्बई में जब लज्जित पत्र 'साधुमत' शुरू हुआ, तब आपिस की सजावट के लिये सानारायण पत्र ने कहा कि इनके लिये इतने टबल और इतनी कुर्मी की आवश्यकता रहगी। हम पर लोहमन्य न कहा "जब हमने 'केसरी' और 'मरटा' शुरू किया था तब हमारा पास तो एसा कोई साइरी टाठवाट नहीं था। वतमान पत्र से हमको एक पाइ भी नहीं मिलनी थी। हम तो अपना बिस्तर गोल कर अपने सामने रख देते थे और लिखते रहते थे। इनना होन पर भी हमारा लिखना बंद नहीं हुआ था।' सादगी और हार्मिक इच्छा न जा काम होना है वह ब्रह्माइव्यर से कभी नहीं हो सकता। वे केसरी के एक एक शब्द के प्रका में नवजीवन का 'संचार' कर देते थे। सरकार उनके लक्षों से

घबराती थी। मे उस भय हो गया था कि कहीं लोकमाय के शस्त्र-बाणों से हमारा साम्राज्य छिन्न भिन्न न हो जाय। उनके शस्त्र गोली की तरह अपने लक्ष्य को बधायें थे। सरकार [कइ बार उनके शस्त्र प्रयोग से ही भयभीत होकर उन्हें बलों में डाल कर लिया था।

स्मरण-शक्ति

वाक्यावस्था से ही उनकी स्मरण शक्ति बना तब थी। जज्बापुत्र जब उनसे अधूरा वालों को नोट-बुक में उतार लेने का कहते थे तब वे उनसे कहा करते थे कि नोट-बुक में क्यों उतारें ? सीधा दिमाग में ही क्यों न उतार लें ?

अन्यतम वेतन

न्यू इंगलिश स्कूल तब शुरू हुई, तब लोकमाय कंबल तीस रूपया मासिक वेतन लेंगे थे। तब एक साथी ने उनसे कहा 'क्या मर जान पर हम अपनी टाई क्रियाकरर जिने पैस भी च्छा नहीं पाएंगे ?' लोकमाय ने उत्तर दिया, 'इसकी चिन्ता तो हमारा च्छले समाज का अधिक होनी चाहिये। मान टनक लिए नहीं किन्तु गन्गी दूर करण के लिए भी वह हमारा मुक्त शरीर ना अस्व बना देगा।'

हमारा कर्तव्य

उन प्रकार उनके नानाविध जीवन प्रसंगों में जनता सदक शील सक्षम है। किसी भी मन्त्रपुत्र का जन्म तिम या भाद्र दिवस मनाने का मतलब यही है कि जनता उनके जीवन की निष्पत्तियों का स्मरण कर अपने जीवन में उतारने की कोशिश करे। हमें भी कि आधे तिथि श्रद्धांजलि दिवस का मन्त्र अर्थों में मनाना है तो इतल बरातों में ही नहीं, उनके श्रावण का स्मरण कर उनको अपने जीवन में उतारना का प्रयास करना चाहिये, जिनमें उनकी सायकता समाधी हुई है।

वैश्व १ / ४० [निरक श्रद्धांजलि दिवस पर किया गया प्रवचन]

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

कवि का कार्य और क्षेत्र :

आज सातवीं अगस्त रबीन्द्र का श्रद्धाञ्जलि दिवस है। वे भारत ही नहीं, समस्त विश्व के महान् कवि थे। कवि यानी दृष्टा-देखनेवाला। जो बात साधारण मनुष्यों को बहुत पढ़ने, सुनने, विचारने और अनुमान करने पर भी समझ में नहीं आती वह कवियों द्वारा सहज ही देखी जा सकती है। इसीसे वे दृष्टा यानी देखने वाले कहे जाते हैं। साधारण मनुष्योंकी दृष्टि वर्तमान काल तक ही सीमित होती है, जब कि निर्मल बुद्धि वाले कवियों की नजर अनागत—मधियतक पहुँच जाती है। एक मुहावरा है—'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।' यानी सूर्य दुनिया के समस्त अधकार का नाश करनेवाला है, परन्तु जिस अधकार को दूर करने में वह मा असमर्थ रहता है, उसे कवि दूर कर देता है। सूर्य तो स्थूल पृथ्वी पट पर ही अपना प्रकाश फैलाता है, परन्तु कवि सूक्ष्म हृदय पर भी अपना प्रकाश फैलाता है। वह मानव हृदय के कोने कोने में पहुँच कर अज्ञानाधकार को दूर करता है। सूर्य की शक्ति तो मर्यादित है, जिससे वह अपने मर्यादित क्षेत्र का ही अधकार दूर कर सकता है। अमा जब कि सूर्य भारत में प्रकाश फैला रहा है तब वह अमेरिका के अधकार को दूर नहीं कर सकता। परन्तु कवि की शक्ति सूर्य की तरह सामित नहीं है। वह एक ही साथ सारी दुनिया के अधकार को दूर कर सकता है। वह अपने साथ दूसरे को भी दिव्य-दृष्टि दे सकता है।

अनका स्वदेशाभिमान

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के हृदय में स्वदेशाभिमान तथा स्वदेशाभाषा का प्रेम उठूँले मारा करता था। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की सरकार ने जब अपने देश में हि दुओं (हि द निवासियों) को नागरिक हक पाने से वचिन रखने का कायदा बनाया, तब कविवर ने जब तक यह कायदा रद न हो जाय तब तक इन देशों में नहीं जाने की प्रतिज्ञा धारण की थी। अमेरिका का आमत्रण भा उँई मिला, पर वे वहाँ नहीं गये। असहयोग आन्दोलन क समय ब्रिटिश गवर्नमेंट का दिया हुआ 'नाइट हुड' का खिताब उँहोंने लार्ड चैम्सफर्ड को वापिस लौटा दिया था। विश्व के साहित्य निर्माण में उनका महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। उनकी लेखना किषा भी विषय से अप्रुती नहीं थी। चरित्र, कथा, कहानी, नाटक, प्रहसन, प्रवास वर्णन, आत्मजीवन, गीत, काव्यादि सभी विषयों में इनकी लेखनी रमी हुआ थी। यही वजह थी कि उँहें इन सभी विषयों क लेखन में पूण सफलता भी मिला। यह विशाल साहित्य उँहोंने सब प्रयम अपना मातृभाषा में ही लिया। बाद में उँहोन स्वय कुठ प्रथों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया। लेकिन आज तो विविध भाषाओं में भी उनके अनुवाद सुलभ हो गये हैं।

गीताबलि

कवीन्द्र ने अपनी कल्पना शक्ति स समस्त मशर में भारत की दिगन्त कीर्त पर स्वय कल्प चनाया है। गीताबलि जैमी छांगी-सी पुस्तक लिख कर उँहोन सारी दुनिया को चकित कर दिया। इस पुस्तक पर उँहें सत्ता लाल रूपयों का नोबल पुरस्कार भी दिया गया था, जिसे स्वीकार कर उँहोन नोबल प्राइज के गौरव में ही अभिवृद्धि की थी। गीताबलि की कविताएँ इतनी अधिक लोकप्रिय हैं कि पॉमी पर लूका हुआ कैदी भी

इन कविताओं को गाते समय मृत्यु का भूल जाता है। कुछ दर के लिये तो एसा लगता है कि मृत्यु भी मानो उन कविता को सुनने के लिये कुछ क्षण रुक गई हो।

कवीन्द्र स्वीन्द्र सचमुच कवियों में गिरतात्र थे। विश्व भारती उनका एक सजीव स्मारक है। महर्षि मनु की यह वाणी—

अथमदृश्य प्रसूनस्य सकाशाद्मममन ।

स्य स्व चरित्र शिथिरन् पृथिव्यां मव मानवा ।

उन्होंने विश्व भारती द्वारा मृत्यु कर लिया है।

आत्मोपासना लक्ष्य

टैगोर यह मानते थे कि आज की दुनिया के तमाम अनर्थों का मूल सङ्कलित राष्ट्रवाद ही है। उन्होंने अमरिका में कहा भी था कि राष्ट्र, प्रजा, धर्म, नेगनेलिज्म, अथवा राष्ट्र उपासना, यह आधुनिक जातियों में एक नया रोग पैदा हुआ है। इसमें सवनाश समाया हुआ है। दो राष्ट्रों के बीच में प्रेम की मुल्ह कराना ही आय सत्कृति का या उसका प्रतिनिधि हमारे कवीन्द्र का सन्देश था। मनुष्य की यन्त्रिगत या सामाजिक सर्वोत्तम चरम उत्पत्ति ही आय सत्कृति का ध्य है। स्वान्योपासक कवि कहता है कि 'आत्मा को छाने मत करो और दुखों से घबराओ नहीं। उन्हें सहन करो और बड़ बनो। आत्मा अमर है और परिस्थिति क्षण जीवी है। सहनशक्ति द्वारा भी परिस्थिति पर काबू किया जा सकता है। आत्मदेव की उपासना छोड़कर अहंकार के या राष्ट्रवादना के पीछ मत पडो। आत्मा को ही पकड़ रो, क्योंकि वही गिर है, मगत्र है और परम सुन्दर है। इसलिये उसी का उपासना करो।'

उत्तम अतिम

टैगोर ने सप्तम आखिरी लक्ष्य 'प्रादमीस इन मिनीबेसन — पवित्रमी... सत्कृति का गियाग' लिखा था। उस लेख के अन्त में—

अधर्मण यन्मत्तं तत्तं भद्राणि पश्यति ।

तत्तं सपन्नान् भवति समूहस्तु विनश्यति ।

यह श्लोक दिया गया था । गुजराती भाषाने को यह कहावत है कि 'कठोर ने भेर कुशल न चर्मा ने घर धाव' इसका अर्थ इस श्लोक में क्या जाता है । अणवर मनुष्य को ऐसा लगता है कि अधर्म का आचरण करने से, असत्य बोलने से हमको वैभव मिलता है और सुख होता है । इसके विपरीत धर्म का आचरण करने वाला दुखी और दरिद्र होता है । सत्य और नीति के मार्ग पर चलने से यदि दुख होता हो तो फिर धर्म को क्यों कर पकट रखना चाहिये ! जब ऐसा संकल्प पैदा हो जाता है तब हमारी धर्म भावना की नाज दगमगान लगती है । इस अरिपर धारणा को हट करन की रक्षाधर्म इस श्लोक में मरी हुई है । इसमें कहा गया है कि 'अधर्म से मनुष्य धृष्टि प्राप्त करता है, सुख-वैभव प्राप्त करता है और सम कुशल जाता है, परन्तु अन्त में उसका समूह नाश होता है । तब फिर यह स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि एक मात्र धर्म ने ही यथार्थी सुख शांति प्राप्त की जा सकती है ।

समभाव के सर्जक

टैगोर कवि थे, इससे हम उतरो मान नहीं देते हैं । परन्तु सचमुच में एक कहावत है कि 'साधरा विपरीता भवति राक्षसा ।' कैश सारा गद को उलटने पर 'राक्षसा' उद्भूत होता है वैसा ही विषम दृष्टिकोण और अर्थ मति कर साधर तथा कवि भी राक्षसत्व क होत हैं । यह वृत्ति हमारे कवि में लक्ष-मात्र भी नहीं थी । उन्होंने जो कुछ भी कहा और लिखा, पश्याय रत्ने बिना समभाव पूर्वक ही कहा और लिखा । गांधीजी समभाव के पैगम्बर थे तो रवी द्रनाथ समभाव के सर्जक कवि थे । कवीन्द्र की निष्पक्ष वृत्ति और सम दृष्टि को लेकर ही जनता उनको मान रही है । उन्होंने 'शोचन

प्राइज' प्राप्त किया, इससे वे महान् थे, यह बात भी नहीं है। उनकी तरह आज तक कद साहित्यकारों को 'नोबल प्राइज' मिला है, पर उनमें हमारे कवि जैसी विशालता भाग्य में ही दिखाई देती है। 'रुडयार्ड किन्सीन' को भी साहित्य लेखन पर नोबल प्राइज मिला था, परन्तु उनकी मनोवृत्ति तो बहुत सकुचिन थी। उदाहरण के तौर पर देखिये उनका ये शब्द

West is west and east is east and the twin can never
meet My heart is narrow therefore it can not make room
for any country other than my own

दूसरी तरफ टैगोर की मनोवृत्ति देखते समय तो ऐसा लगता है कि उनके हृदय में प्रेम की सुरसरी बहती थी। उनका भी एक अर्थ देखिये

My heart has spread its sails to the idle winds for
the Shadowy is land of any where

इस कवि-सम्राट की कल्पना शक्ति बड़ी अद्भुत थी। उ होने अपने कल्पना के सागर में गहरी दुबकियाँ मार कर अनेकों अमूल्य रत्न और मोती लावे हैं, जिन्हें अपने काय में पिटाकर टुनिया के समझ रखा है। इतना बमर है कि ये अमूल्य बवाहरात उ होने खुले नहीं छोड़ हैं, पर गलत चक्कन वाली (डिबिया) में बंद किये हैं। चाबा भी डिबिया के भीतर ही है। डिबिया खोलने की योग्यता जिनमें न हो उनको ये मोती नहीं मिल सकते। मुझ पुरुष ही उनको प्राप्ति कर सकते हैं। उनका पूरा परिचय तो उनका साहित्य ही दे सकता है। फिर भी उनका यहाँ योग्यता परिचय कराया जाता है।

सैन्यप्रता का सगीत

'ध्रुव' नामक उनकी अमज्जा पुस्तक में उ होने छोटे छोटे वाक्यों का अत्यन्त अल्कार में मनुष्य को बना सुन्दर उपदेश दिया है। उसका एक वाक्य है

The water fall sings I find my song when I find my freedom ऊपर से गिरता हुआ पानी का प्रवाह गाता है कि 'जब मैं स्वतंत्र हुआ तभी अपना सगत भी प्राप्त कर सका हूँ।' इस अ-योक्ति से कवि यह बताना है कि पाना जब तक बंधा रहता है, तब तक उसमें से सगत नहीं निकलता। उमा तरह आत्मा भी जब तक बंधन मुक्त नहीं बनता तब तक उसमें से भी मधुर संगीत का प्रादुर्भाव नहीं होता। विकारों से मुक्त होने पर ही आमा संगीत के माधुर्य का अनुभव कर सकता है। दूसरे एक वाक्य में वे कहते हैं

How far are you from me of rust I am hidden in your heart o flower

फूल फूल से पूछता है कि 'हूँ फूल तू मुझ से कितना दूर है?' फूल बराबर देता है कि 'मैं तेरे हृदय में छुपा हुआ हूँ।' इस वाक्य से वे यह कहना चाहते हैं कि कम के पीछे उसका फल तो रहा हुआ ही है अतः सत्कर्म करते समय उसके फल की आशा रख बिना अनासक्त भाव से करते जाना चाहिये। सत्ता और प्रेम के बीच का अन्तर बताने हुए कवि कहता है—
सत्ता और प्रेम

Power said to the world you are mine the world kept it prisoner on her throne love said to the world I am thine world gave it the freedom of her house

सत्ता ने विश्व से कहा कि 'तू मरा है।' विश्व ने सत्ता का यह प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। परन्तु जब प्रेम ने सत्ता को कैद कर विश्व से कहा कि 'मैं तेरा हूँ' तो विश्व ने उसकी नम्र वाणी से खुश होकर अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में उसको स्वातन्त्र्य दे दिया। सत्ता और प्रेम की शक्ति में यही अन्तर है। सत्ता से प्रजा का शरीर अधीन किया जा सकता है, पर उसके हृदय को तो प्रेम से ही जीता जा सकता है। नीकर पर सत्ता जमाने जायग

ता वह हमारे सिरपर सवार हो जायगा और अधिक बिगड़ेगा। परन्तु उसी का प्रेम से रखा जायगा तो वह हमारे पास पड़ेगा और द्रुगुना काम भी करेगा। लेकिन आज का हाल तो यह है कि मानव मात्र में सत्ता खलाने की उक्ति निम्न हो गई है। राजा प्रजा पर, सेन नौकर पर पिता, पुत्र पर, गुरु शिष्य पर, और सास बहू पर, दो हर एक क टिल में सत्ता की लालसा बढ गई है। लेकिन उनको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि दूसरों का सत्ता स नहीं, पर प्रेम से ही जीता जा सकता है।

नम्र तथा लघु बनन का लाभ ज्ञात हुए कबी-द्र कहत हैं

Tiny Gress your steps are small but you possess the earth under your tread घास जड़ी धु-र वस्तु भी अपनी नम्रता तथा लघुता स महान् पृथ्वी का अपन पैरों तरे रखती है। दूसरों को अपना बनान की तथा गुरुजनो क कृपा भाजन बनने की नम्रता ही एक चाबी है।

जन सेवा ही ईश्वर प्राप्ति

गीताबलि की ११ वीं कविता में कवि ईश्वर प्राप्ति का सच्चा मार्ग बतात हुए कहता है—'मानव तथा ही ईश्वर प्राप्ति का सच्चा साधन है।' यह कविता रशियन प्रजा की बड़ी ध्यात लगता है। कबी-द्र को सबसे पहला भद्राबलि अपना इस कविता स ही रशियन प्रजा द्वारा मिला थी। इस कविता में व कल्पना करते हैं कि— एक भक्त ईश्वर की प्राप्ति के लिये मादर में जाता है और उसक सब द्वार बन्द कर ईश्वर का आप अपने लगता है। माला परता है स्तोत्र गाता है और ईश्वर दान की आशा रखता ह। उसको संबोधित कर कवि कहता है—

— Leave this chanting and singing and telling of beads !
whom do t thou worship in this lonely dark corner—

a temple with doors all shut open thine eyes and see thy God is not before thee ! He : there where the tiller is tilling the hard ground and where the path maker is breaking stones

आखिं मूँ कर मय जपन वाल स कहत हैं—आखिं खाल और खूब, तेरा परमात्मा वहाँ नहीं है । तारा परमात्मा तो वहाँ है, जहाँ किसान अपना कठोर भूमि पर हल जोत रहा है और मजदूर पथर फोड़ रहा है । तुझ यत्ति उस परमात्मा क खोज करन हो तो नू उस किसान और मजदूर के पास जा । उनकी सहा करेगा तो इश्वर प्राप्ति जरूर होगी ।

‘मुट्ट गोधरिग में भी एसा ही एक नरोत्तम भक्त का प्रसंग बताया गया है । राजा मयक राजा स जाकर कहता है कि—महाराज, नरोत्तम भक्त अपना इस सोन क कल्याणाल मन्दिर स भी कभी नहीं आता । वह गाव क बाहर एक झाड़ के नीचे बैठकर ही भगवान् के भजन गाता है । परन्तु वहाँ हरदम आत्मियों का मलागा लगा रहता है और सैकड़ों गरीबारी उनके पास आत जात रहत हैं । लेकिन हमार इस मन्दिर में तो कोई नहीं आता ॥ इस समाचार स क्रुपित हो राजा नरोत्तम भक्त के पास गया और बोला ‘एसा मुट्टर भक्त और कीमती मन्दिर छोड़कर आप भगवान् का भजन करन क लिये यहा मिट्टी पर क्यों बैठ हैं ? नरोत्तम भक्त न शानि स उत्तर दते हुए कहा—Because God is not there in your temple क्योंकि परमात्मा तुम्हारा मन्दिर में नहीं है ।’ राजा यह सुनकर स्तब्ध हो गया और बोला—‘महाराज, यह क्या कहत हो ? मर मन्दिर में इश्वर नहीं है ॥ क्या आप नहीं जानत कि मैंने कितने खूब स यह मन्दिर बनवाया है ? और कितनी भयंकर प्रशिक्षा करवाई थी ? दो करोड़ सोन की मोहरों न यह मन्दिर बनवाया गया है ।

भक्त ने कहा 'गजन' यह सब मैं जानता हूँ। परन्तु जिस समय तुम अरना यह मन्दिर बनवा रहे थे, उस समय इजरायेल मनुष्यों के घर वार अति इष्टि में पानी में बह गया था, और व सब मन्दिर की आगा रख कर तुम्हारे पास आए थे। परन्तु तुम उस समय उनकी सहायता नहीं की। तब इश्वर ने कहा था—'अर, यह पामर प्राणी, जो अपने भाइयों के लिये क्षोषण भी नहीं बनवा सकता, वह मरे लिये मन्दिर क्या बनवा सकेगा?' उसी समय से इश्वर ने अपना आसन उस मन्दिर में स उठा कर इस पेट के नीचे रख लिया है। इसलिये मैं यही चैतकर भगवान् का भजन करता हूँ। मन्दिर में जो मूर्ति है वह भगवान् की नहीं, तुम्हारे अभिमान की पुतली है। 'इतना मुन्ते ही राजा का नस तम में आग पैल गह और ब. बाला—'भक्त' तुम मेरा देग छोडकर चल जाओ। मैं तुम्हें आज स दश निकाला दगा हूँ।' भक्तने प्रसन्नता पूर्वक जवाब दिया—
 Banish me where you have banished my God 'ब्रह्मा में मर परमात्मा को नू ने सीमा बाहर किया है वहा स नू मुझ भी खुशी स बाहर करे।' इस कविता से त्रैगोर यह कहत हैं कि जो मनुष्य मानव मत्वा नहीं कर सकता वह इश्वर की सत्ता करने का अधिकारी नहीं हो सकता।

उनके विशाल साहित्य सागर के ये यो-स जन्त्रिण्ट हैं, जिनके चार स मन यकिनित् मात्र ही आपको बनाया है। उनके सारा साहित्य ही अध्ययन और अभ्यास करने जसा है। उनके इस भाव-दिवस के अक्षर पर यदि हम उनके साहित्य का तनिक भी परिशालन कर आमा का उत्पत्ति के पथ पर अक्षर करेंगे तो हमारा जन्म हुए बिना नहीं रहेगा।

बम्बई
 ७८४४

[त्रैगोर शब्दांजलि दिवस पर किया गया प्रवचन]

महात्मा गांधीजी

बापू का प्रेरक जीवन

गत दो हजार वर्षों में किसी क लिय इतना लिखा और कहा न गया, जितना पून गांधीजी क सम्बन्ध में। विश्व के अनेकानेक मानवों न उनक सम्बन्ध में लिखा और कहा है। उनस नवा कुठ मुझ आज कुछ कहना नहीं रहा। मुझ जो कहना ह वह सब पुराना है और अनेक बार कहा जा चुका ह। फिर भी यह हममें प्राणों का संचार करने वाला है—नव चेतन और नव जीवन दन वाला है। सूरज रोज उग्य और अस्त होता है लेकिन वही सूरज प्रति दिन भी उगता है। इस तरह वही पुराना सूरज रोज रोज उदित होकर जैम नव चेतन और नव जीवन द वाता है उसी तरह महापुरुषों का जीवन भी नव जीवन देनेवाला होता है।

गांधीजी का धर्म

कह मनुष्य यह समझत हैं कि गांधीजी राजनीतिक पुरुष थ। और जेम भाइ मुझसे पूछत हैं कि राजनीतिक पुरुषों क बार में क्या आप जैस माधु सन्त भी बोल सकत ह ? मरा उनस कहना है कि गांधीजी स्थूल दृष्टि स मल ही राजनीतिक पुरुष समझ जात हों पर सूक्ष्म दृष्टि स वे एक धार्मिक पुरुष थ। उनके अपन ही गद्दो म कहू तो I wear the garb of a politician but am at heart a religious man —अर्थात् मैं राजनीति का धोला पहनता हू पर हृदय स तो धार्मिक वृत्ति का ह। उनक सभी काय चिरक मुक्त हात थ। धर्म में उनका अट्ट अट्टा थी। हिंसा में उनका विश्वास

नहीं था। व यह खुले तौर पर कहा करत थे कि हिंसा या अघम से किया गया कार्य कभी सफल नहीं होता। व्यक्तिगत क्षेत्र हो या सामुदायिक, अथवा पारमार्थिक किसी भी क्षेत्र में हिंसा का आश्रय नहीं लेना चाहिये। हाँ, अत्याय का प्रतिकार अवश्य करना चाहिये। प्रतिकार करने का भी तरीका हमें गांधीजी ने अहिंसक बताया। उन्होंने कहा: "प्रतिकार भी धम स हो सकता है। अघम, असत्य, हिंसा आदि में सच्चाई का नहीं होता, जिसमें उनका ज़रा किये गये काम स्थायी नहीं रह सकते। सत्य ही बलवान् है और सदा स्थिर भी है। प्रम और मैत्री ही स्थिर रह सकती है। त्यागहारण के रूप में 'अ', 'व' को निरस्त करने और 'स' 'म' का तो दोनों में वैर की ही वृद्धि होगी। पर यदि दोनों में स एक में मैत्री या प्रम के भाव होंगे तो दूसरे का वैरभाव भी कमजोर पड़ जाएगा। वैरा के सामने वैर रखने से तो वैर का अधिक बलवान् बनाता है। अतः वैरी के समक्ष भी वैर न रख कर प्रम और मैत्री भाव धारण करना चाहिये। गांधीजी ने हमें यही सिखाया है।

उनका प्रकाश स्थायी है

वे हमारे बीच से चले नहीं गये हैं। यह सच है कि उनका पंच महाभूत का स्थूल शरीर विलीन हो गया है, परन्तु उनका सूक्ष्म दृढ़ नष्ट नहीं हुआ है। आकाश में घमकन वाले तारों में स का किरण निकलती है वह हजार वर्षों बाद भी निम्बाह दता है और अस्त हुए तारों की अन्तिम किरण भी सैकड़ों वर्षों बाद निम्बाह पड़ती है। ठीक इस प्रकार हम महापुरुष के दृढ़ में से निकली हुई अहिंसा और सत्य की किरण भी हजारों वर्षों तक ज्योतिमान् रह सकती और दुनिया को आलोकित करती रहेगी।

समभाव के पैगम्बर

समभाव उनका मन्त्रिष्क था। वण, जाति, सम्प्रदाय या दश कोड भी उनके कार्य में बाधक नहीं होते थे। उनके मत में ब्राह्मण और

हारजन, अमीर और गरीब, काला और गोरा, गिणित और अगिणित सब समान थे। सबमुक्त गांधीजी समझाये के पैगम्बर थे।

मानवता के प्रचारक

मानवता उनका हृदय था। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में मानवता तान बान की तरह गुथी हुई थी। रक्त और पानी की नलियों में उई हिंसा ही दमोवर होती थी, जिनकी तरफ उ तीन हमारा भी लगे स्वीचा था। जीवन निवाह के लिए तन तोड़कर परिश्रम करनेवाले श्रम जीवियों का अपन जुमी गुलामा मालिकों द्वारा चूसा जागा और उनके स्वप्नका और पीना, बापू में न गवा गया। उनका हृदय पिचक उठा और फल-स्वरूप वे आजादन सन्नामा बन गये। बैम गिरधरलाल की मूर्ति पर झोड पडने और उनके बिन्दु दीपन वादग मारा की पाठ पर, उभी तरह त्रिद्वारायण की यथा भी बापू के हृदय पर अंकित हा जाता थी। बापू मानवता के रगरंज थे। अपन पाम आनवालों को न मानवता के रग में रग गते थे। एक बार वे उडाना के प्रवास पर तीनषु एडम्स के साथ गये थे। स्थान पर गाडा के इन्जिन में बैठ ही थे कि वहाँ एक चूड हरिजन आया। वर अपन मुह में तिनका लखर बापू के पैरों में गिर पना। बापू न हँसत हँसत उमम भेट मागी। हरिजन के पास एक पैसा था। उसन वहा अपना ब्रह्म स निकाला और बापू को तन के लिए अपना हाथ बत्ताया। बापू न कहा— 'मैं कुछ विशय भेट चाहता हूँ।' हरिजन बहुत खुश हुआ। उम लगा कि मर पाम कुछ विशय चीज है, जिसे गांधीजी चाहत हैं। बापू न कहा— 'मुझे ये तीन बचन गे एक ता मइ कि किमा भी तिन किमा के सामन मुह में तिनका नहीं पना। क्योंकि उगे बने सभी मनुष्यों को स्वमान होता है जिन हर मनुष्य का सुरामल रखना चाहिये। दूसरा शराब न पीना और तीसरा मांस न खाना।' हरिजन न बापू की तीनों बातें मजूर कर ली और इम तरह

दो चार मिनिट के ससग स ही बापू ने उस पर मानवता का रग चढ़ा दिया। सचमुच उनका एता हां धमत्कार था।

सत्य और अहिंसा की मूर्ति

सत्य और अहिंसा तो उनके श्वासा उवास थ। अक्षय और हिंसा के बानाकरण से उनको अपार दुख होता था। आजादा इण्डिया से पूर और अहिंसा में जो हिंसा का नग्न ताडव हुआ था उसक उद्दे अमश पीटा हुआ था—उनकी आमा रा पटा थी। उस भयकर हिंसा कांड के बीच भी बापू अहिंसा के दीपस्तम्भ बने और प्रेम का निमल प्रकाश फैकते रहे। उनकी शर्मा, पर खिर अवाच-वैर का बदला प्रेम से चुकाआ, बराबर गूइती ही रहा। अहिंसा के प्रति उनका तिल भर भी भद्दा कम नही हुआ।

सत्ता और सत्याग्रह के आदर्श

सत्ता और सत्याग्रह टानो उनक पैर थे। उनकी सारी प्रवृत्तियों सेवा-मय ही थी। हमारे पूर्वजो ने—भगवान् महावार और बुद्ध न—को मंत्र दिया था उस हम भूल गये थे। बापू न फिर स उसकी याद टिण्ड। व कहते थ कि जो रोगी की—दुखी की—सेवा करता है वह प्रभु का सेवा करता है। भगवान महावार स भी एक बार यह प्रश्न किया गया था कि सत्ता करन से क्या लाभ होता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा था —‘सेवा करन स अन-करण शुद्ध होता है। तीर्थकर जैसा योग्यता प्राप्त करने का राशमाग भा सेवा ही है। बापू के जीवन में यह सेवा अनक तरह स मिली जुला सिखाइ देती थी। सेरामाम में वे अपन हाथों स ही रोगियों की सेवा करन थे। एकवार खुबली का रोगी—एक किसान आया और उसन बापू स अपनी बीमारा का इलाज पूछा। बापू ने साचा कि यह गराव मनुष्य अपन लिय साधन सामग्री कहाँ से लविगा? उद्दीन अपने लिय भरे हुए टब के पानी से उमे रंनान कराया और फिर अपने

हाथों से उसका शरीर पर मलहम लगा दी। उस प्रकार मवा और मयाप्रह
उनके चरण नन हुए थे।

अभय और समय

अभय और समय उनका सुत्राय थी। एक तरफ मारा
दुनिया का अभिप्राय ही और दूसरी तरफ अपना निर्दिष्ट
सत्य हो तो सारी दुनिया की अलगगना करके भी वे अपने निगयानुमार
ही चलते थे। उनकी नियमना यहाँ तक विकसित हो चुका थी कि वे
किसी भी यत्ति या सत्ता से भयभात नहीं होत थे और न कभी उहाँन
दूसरों को भयभीत करन की इच्छा ही की थी। गिनित, अशिनित,
आबाल बृद्ध, सगचारा दुराचारा सब काइ उनक पास बिना किसी शिक्षक
के आ जा सकते थे।

तीर्थ-स्वरूप बापू

पवित्रता और विवेक उनक नन थे। कत्रिवर टैगार ने कहा है कि
'यन को मनुष्य का रूप धारण करन का इच्छा दुद, और वह गांधीजी क
रूप में अस्तित्व हुआ।' मरि मरि मरि में जाने पर जैसे पवित्र
विचार आते हैं वैसे पवित्र विचार गांधीजी क निकल रहन पर आते थे।
मानों व स्वय ही तीर्थ स्वरूप थे।

समाज सुधारक बापू

प्रजा न्ति की अनकों प्रवृत्तियाँ उनकी रोमायना थी। अत्रयता
निवारण और स्त्री उद्धार व ही उनक मरान् सामाजिक काय थे। मनुष्य
के हृदय में रहे हुए शूरे अत्राल, अनुचित रीति रिवाज आदि निफालने का
ठ होने भरमक प्रयन किया था। मनुष्य मनुष्य क माप में जो उच और
नीच कुल का लेकर पशुता का यनार करता था उचका उन्नेन मान

कराया और अस्पृश्यों के लिये भी अनेकों मस्जिदों के द्वार खुलवा दिये। उन्होंने कहा कि 'मनुष्य अपने काय और विचारों से ही ऊँच नीच हो सकता है, जन्म से नहीं।' स्वाना ज्ञान मरस्वती ने भी यही मार्ग प्रदर्शन किया था। भगवान् महावीर ने भी यही संदेश मुनाया था और आचरण में भी उत्तम था। उन्होंने अपने जन्म से एक अट्टर प्रत्येक मानव को जिना किसी भेद भाव के साथ बनाया था। महात्मा बुद्ध ने भी इसी मार्ग को प्रदर्शन किया था। उन्होंने भी अंगुष्ठों को अपना साधु बनाया था। आज दादू इब्बार वष बाद गांधीजी ने भी मानव का मानव क रूप में जीवित रहना सिखाया। स्त्री को सभी अद्वय समझने से, परन्तु गांधीजी ने उस निभय बनाया और स्त्री एक शक्ति है, यह सिद्ध कर बनाया। पार्श्विक ब्रह्म मन्त्र ही पुरुष में अधिक हो, पर नैतिक ब्रह्म में स्त्री पुरुष से भी ब्रह्म कर है। स्त्री जाति का शीघ्र अफ्रिका का में बोधा गया था। त्रिस समय गांधीजी अफ्रिका में थे उस समय एक भाई यहाँ से अपनी पत्नी को लेकर अफ्रिका गया। इस पर अफ्रिका की सरकार ने एतसाज किया कि तुमको यहाँ रान का अधिकार है, तुम्हारी पत्नी का नहीं। इस पर केस चलाया गया और अन्त में कोर्ट ने फैसला दिया कि खिम्बी धर्म के अनुसार त्रिनके विवाह को में दज नहीं कराये गये होंगे ऐस विवाह गैर-कानूनी माने जायगे। गांधीजी ने यह मुना तो विचार किया कि अगर इस तरह विवा गैर कानूनी मान जायेंगे तो बालक भी गैर कानूनी माने जायगे। इस तरह तो हिन्दुओं की सारी सम्पत्ति सरकार के हाथ में चली जायगी। और इस प्रकार विवाहित स्त्री का कोई अधिकार नहीं हो तो उसका बना अपमान है। गाँऊ छील्ल हुए बापू ने स्मोद करती हुद बा से कहा—'अनरुत एम्स कहा है कि तू मेरा औरत नहीं है, पाशवान है। अब तू क्या करगी?' बा को उस समय अपनी

शक्ति का मान नहीं था। अतः उन्होंने कहा—‘इस तो औरतें हैं, इसका क्या हो सकता है?’

बापू ने कहा—‘जल में जा’

बा—‘इससे जाना कैसे होगा?’

बापू—‘क्यों नहीं! राम वन में गया था तो सीता भी उनके साथ गई थी। मैं जल में जाऊँगा तो तू क्यों नहीं जा सकेगी?’

बा ने कहा—‘ठीक है, पर मैं लाऊँगी क्या?’

बापू—‘फल खाना, नमिन् ता उपवास करना, और कदाचित् तू जल में मर भी जावती तो मैं आजीवन तेरी बगदम्रा के रूप में पूजा करत रहूँगा।’ श्री ज्ञानेश्वर का बीज इन शब्दों में सब प्रथम अष्टाका में बोधा गया था।

माया और बापू

बापू ने मानव को मानवता, कायर को साहस, अन्धबो को आला और गुलाम को मोक्ष दिया था। कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा था। शिक्षण के लिये उन्होंने शुरुआत ही विचार किया था और नये नये माग बताये थे। गुजरात विद्यापीठ की स्थापना में उनका अमूल्य सहयोग रहा था। वे अक्षर-लिखने और-बोलने में भी बड़े सिद्धहस्त थे। जिस पत्र-सूत्रकर अक्षर भी बहुत सुश्रुत होत थे। फिर भी राष्ट्रमाया हिन्दु-माना के ही हिमायतार रहे थे। उनमें यह अमोघ शक्ति थी कि वे अपने सकल्प के से सारवातारण में परिवर्तन कर दते थे। उन्होंने खादीवा प्रचार करना शुरू किया तो हजारों स्त्री पुरुष खादी पहनने लग गये। हमेशा जरा और रदामा कपड़ों को पहनने वाला जिया भी खादी पहनने में गौरव मानने लगीं। धर धर धरखा चलन लगा और हाथ में तखत रखना भी एक रिवाज हो गया।

प्राकृतिक चिकित्सा

इसके सिवा गांधीजी न प्राकृतिक चिकित्सा का खोजकर आहार और आराम्य शास्त्र में भी आक नवीन परिचयन करने की सूचनाएँ कीं। नया को सरल, समृद्ध और आवाग वृद्ध सब समस्त मर्कें इसका दृष्ट आग्रह रक्ष्य हुए एक शान्त-काश भी लहोन तैयार कराया।

हम महापापी न बने

समाप्त के ता वे बन् गीवीन थे। प्रसु मक्ति क भजनों का सुगत हुनत व तस्लान हा जाने थे। इस तरह गांधीजी क जीवन से हम बहुत कुछ जान का मिलता है। गोडसे ने ता उनके स्पूल दृष्ट का ही घान लया है, परन्तु जब हम अहिंसा सत्य, अभय, विनेक, सवा और सत्याग्रह का घान करत हैं तब हम उनक सूक्ष्म दृष्ट का घान करन वाल महापापा बनत हैं। स्थूठ दंष्ट ता मित्र वाग हा है, उन टिका कर रखने की किमी का भी शक्ति नहीं है।

जीवन-मरण

गांधीजी न जम से मृत्यु परन्तु अपनी सारी जीवन पद्धति दुनिया क समक्ष पेश की है। जीरे कैसे और मृत्यु आये तो उसका भी हँसते हँसते आलिगन कैम लिया जाय, यह हमें गांधीजी न सिखाया ह। जीवन की अन्तिम सात तक भी टरने सवा घम स अपना मुँह नहीं मोगा था।

जमर शहीद वापु

आज ये एक महान गरीब बन गये है। हनु विमल का उनके धनुवादियों ने ही रण पर चढ़ाया था। सात्रात क सामने जय सत्य और कायत गगो में से एक का कायम रखन का सवाग आया तब उनमे सत्य क लिए जरा जानन की नाग न रेना हा उचित समझा। उसक

कालान गगों न उम भी ब्रह्मरूप मार डाला । भ्रातृघ्न को भा अपने कुटुम्बा के तीरे से मौन के घाट उतगना पडा था । स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने हा ग्मोइय द्वारा जहर टन पर मार गये थ । मरते समय जब रमोइय न उनक समथ अपने पाप को प्रकट किया तो स्वामी दयानन्द सरस्वती न अपन पास के सभी रुपये देत हुए उस पर अपार दया प्रकट की थी और उनसे भाग कर अपना जान बचान को कहा था । बुद्ध का उनका साला सग मारन को उग्रत रहा करता था । भ० महावार पर उन्हीं क शिष्य गौशालक न तत्रालेया फेर कर उन्हे मारन की श्वा का था । प्राण सवत्र महापुरुषों का मरण इमी तरह होता है । महात्माजी को भी उन्हीं महापुरुषों की पत्ति में खडा होना था । निगान वे भी अपन ही देग माइ क हाथों से मृत्यु प्राप्त कर उन्हीं अमर गहीदों की पत्ति में जा मिल हैं ।

बापू की महान् भेंट

बापू न मानवता का महाविमान दुनिया का भेंट किया है । मनुष्य जब पृथ्वी पर गना होता है तब उसक अल्य नदा, समुद्र, पहाड आदि को लापना कटिन हो जाता है । क्योंकि ये सभी पृथ्वी के टुकडे टुकड कर टन वाले हैं । परन्तु जब वह विमान न उगता हा, तब ये नदा, नाड, पगान, समुद्र आदि उसको छूते तक गही हैं । उमा तरह प्रेम और मानवता के महाविमान में बैठन वाल मानव यात्री को भी राष्ट्र प्रजा, सम्प्रदाय ना जानि क भग नही दूत हैं । इन सबस दूर रह कर वह सरलता से अपना जीवन व्यतीत कर सकता है । बापू न अपना सन्तान केवड शर्गी न ही नहीं, बल्कि अपन जीवन और आचरण से मी सजाव कर बताया था । बगाल न एक कदावत है—‘आमार जीवन इ आमार जाना’ यह बापू क लिये बिल्कुल सत्य सिद्ध टुर है ।

उनकी इच्छा

उनका अन्तिम इच्छा थी कि भारत एक आन्ध्र देश बन कर
शान्ति प्रसन्न और दुःख से सन्तप्त बन हुए विश्व को मानवता, मैत्री और
श्रम का पाठ पढ़ाये। उनकी इस इच्छानुसार अगर हम चलें तो उम्मी में
गांधी जयन्ती की सफलता है।

बम्बई

२१०४८

[बैन युक्त सच, बम्बई के तत्वावधान में
गांधी जयन्ती के उपलक्ष्य में श्रीमहावीर बैन प्रिया-
लय में दिया गया प्रदर्शन]

महा मानव का महा-प्रयाण

बापु पर गोली—एक प्रश्न

आज सारा सभार शोक भागर में डूबा हुआ है। सभार आज कुछ ऐसा अनुभव कर रहा है कि अनदम्बा अनमुना भूकम्प आज आ गया हो। हर रोज हजारों मनुष्य मरते हैं, किन्तु हमें विचार तक नहीं होना कि कौन कहा मस्ता है! और जिसकी अन्त्यष्टि क्रिया कहाँ होती है। कबि आज एक व्यक्ति बापु— के चल जाने पर जो अपार दुःख हो रहा है, यह क्यों हो रहा है? इसका क्या कारण है? उन पर 'गोली चली' यह समाचार सुनकर मानो हमारा शरीर पर गोली चली हो, ऐसा अत्यन्त दुःख उनका वियोग से हमें क्यों अनुभव हो रहा है? यह एक प्रश्न है जिसका उत्तर हमें यहाँ खोज लेना है।

जीवन-कस्तूरी

एक बार बरार में कोई धनवान् व्यक्ति एक विद्यालय मकान बना रहा था। उस समय कस्तूरी बच्चे वाला एक नेपाली उसका पहुँचा। उस धनवान् व्यक्ति ने उससे कस्तूरी का भाव पूछा। नेपाली ने निरस्कार भरा उत्तर देते हुए कहा—'तुम दलित क दलित मनुष्य कस्तूरी क्या खरीद सकते हो? पूना जाने पर भी गांधी ही माल खरीद सकता। यह सुन कर उस धनिक व्यक्ति का बड़ा रोष हुआ और उसने उसी समय गांधी से कहा—'तेरे पास जितनी कस्तूरी है वह अभी समय बचा तो खरीद ले और अपना रूप लाल। मैं अभी इस बच्चे से मिलना देता हूँ ताकि उत्तर भारत में जाकर तू यह कह सक कि दलित क भाग तो कस्तूरी की दीवार बनाते हैं।' अन्तर्मुख उस व्यक्ति ने मारी कस्तूरी

कर कर चूने में मिट्टी दी और उसमें अपने मकान की नींवें बनवाईं। कहते हैं, आज भी उन मकान की दीवारों में कस्तूरी की सुगंध आती है। जीव इसी तरह महा-मात्री के जीवन-आत्माओं की नीवारों में भी कस्तूरी डाली हुई थी। उसकी सुगंध उनके जीवन पथतः तो सत्र सत्र की ही, परन्तु उनके अवसान के बाद भी हजारों वर्षों तक उनकी यह सुगंध महकती रहेगी। विज्ञानका एक नियम है कि हजारों वर्ष पूर्व निकल हुए तार की किरण को आज भी हम देख सकते हैं, आज के हुए तार की अन्तिम किरण हजारों वर्षों बाद भी टूटी जा सकती है। यह सब है कि महा-मात्री का जीवा तारा आज टूट गया है, पर उसकी किरणों का प्रकाश तो हम हजारों वर्षों तक भी मिलता रहेगा। निष्कर्ष यह कि महा-मात्री का जीवन आत्मा की सुगंध और प्रेम का प्रकाश फैलाता था, पर आज उन जीवा प्रदीप के जूस जात से समस्त मसार में अधरा छा गया है और वह शोक-सागर में निमग्न हो गया है।

महा-मानव बापु

महा-मात्री को ही साधारण मनुष्य नहीं था। वह महा-मानव—भद्र गुण था। अमय, अद्रय और अवेग्य य महापुरुष के तीनों लक्षण हैं। इनको हम महा-मात्री के जीवा में भली भाँति देख सकते हैं। अमय बनना आध्यात्मिकता की नींव है। इसके बिना कोह भी सद्गुण निक नहीं सकता।

अमय

मृत्यु के बिना किसी भी सद्गुण का मूल्य नहीं होता और जो सद्गुण प्राप्त है वह निभयता की शक्ति में ही पुष्प बन कर बिल्लते हैं। चाय पीना, परीपकार, रोग-त्याग, आग्रह-परक प्रतिकार करने की हिम्मत और मौका आने पर आम-अलिखित तक करने की तैयारी, ये सभी गुण निभयता द्वारा ही हृदय में उत्पन्न हैं—विलुप्त हैं—पतते हैं। निभयता उदित सभी

प्रवृत्तियों निराल होती हैं। गीता में भी जहाँ ऐसी सम्पत्ति का घण्टन किया गया है, वहाँ निमग्नता को ही सर प्रथम स्थान दिया गया है। आसुरी सम्पत्ति की परास्त करने के लिये जब ऐसी सम्पत्ति अपनी "दू" रचना करती है, तब सनापति का पद अमय को ही प्राप्त होता है। रामानुज प्रियानन्द न भी कई बार अपने भाषणों में कहा है कि fear is sin— भय पाप है। इतना ही नहीं, भय सब पापों का मूल भी है।

इस प्रकार अनेक गुणों का जनक अमय महापुरुष का प्रथम लक्षण है। वह दो प्रकार का है—एक तरफ ता मनुष्य किसी वृत्ति या चरमस्त मत्ता से भी भयभीत न हो, और दूसरी तरफ उसमें भी कोई वृत्ति भयभीत न हो। एसा दो तरफा शुद्ध जाचग होना ही 'अमय' की निदिमाननी जा सकनी है।

मृत्युजय वापू

महामाजी क जीवन में अमय इसा रूप में प्रतिष्ठित था। अमेरिका में निरव कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जब एक पत्रकार न महामाजी की विशपताएँ पृछीं, तब उ होने उत्तर देते हुए कहा था कि महामाजी में तीन विशेषताएँ हैं। अमय, सत्य और हिताव की सफाद उनके पास इतना अधिक है कि वे पाद पाद का भी लप्या रखने हैं। जिन काम क लिये जो रकम प्राप्त हुई होगी उनी काम में वे उसका उपयोग करते हैं। मुझ याद है कि एक बार सौजन्य मून रामी आनन्द न प्रसगरग बातचीत में कहा था कि महामाजी को एक भाद न लोकमान्य तिलक का सुदर जीवन परित्र लिखने वाले को गी हजार रुपये इनाम देने के लिये पिये थे, परन्तु योग्य लेखक नहीं मिलने पर वह रकम आज भी उनी तरह अलग रखी हुई है। उसका किसी दूसर काम में उ होने उपयोग नहीं किया। यह उनकी हिताव की सफाद का एक छोटा सा उदाहरण है जिन पर से उनकी प्रामाणिकता का पूरा पूरा अज्ञाज लगाया जा सकता है। उनकी

सत्य की उपासना को तो सब कोट जानते हैं। सत्य एक तरफ हो और सारा दुनिया एक तरफ हो तो भी वे सारा दुनिया को छोड़कर अकेले सत्य के निकट अडिग खड़े रहते थे। बापू की निभयता का परिचय देने हुए रसाद्रनाथ ने कहा था कि मैं तो विश्व-कवि कहा जाता हूँ फिर भी मेरे सामने काइ मनुष्य खड़ी निकल कर आवे तो मैं डर के मारे बालक का तरह भागना शुरू कर दूंगा, किन्तु गांधीजी के समक्ष यदि कोई छुरा लकर आवे तो वे उसका हमने हुए स्वागत ही नहीं करेंगे बल्कि उसके सामने जाकर खड़े हो जायेंगे। यह है उनकी निभयता। उनको क्रिमा यत्ति या आपत्ति का भय नहीं था और न मृत्यु का ही भय था। वे मृत्युञ्जय थे। इनमें कोई भयभीत हो, ऐसा उनका आचरण नहीं था। वे सबका एक समान प्यार थे। एक छोटे से बालक से लेकर एक भिखारी, मूख, पंडित या दुराचारी सब उनसे निभयता पूरक मिल सकते थे। इस प्रकार समय रूप में गांधीजी अभय को धारण किये हुए थे।

अद्वेषी बापू

महापुरुष का दूसरा गुण है अद्वेष। अहिंसा और प्रेम का पहला रूप अद्वेष और ही बापू की जीवन सिद्धि का मजीब आदेश था। गत कुछ महीनों में तो अद्वेष अहिंसा और अद्वेष ही उनका उपदेश का मुख्य भाग बन गया था।

उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी लड़ाई में ही गुजारी। लड़ने के लिये ही उनका जन्म हुआ था ऐसा भी अगर कहा जाय तो अनुचित नहीं है। फिर भी उन्होंने विषा के साथ बैर नहीं रखा। जिसके साथ वे लड़ते थे उसका भी हित ही चाहते थे। वे एक तरफ तो शत्रु की मानवता के सामने खड़ा लड़ते थे, पर दूसरी तरफ उसकी मानवता के साथ भाइयारा भी बंधन थे। सारी जिन्दगी तक लड़ाई लड़ते हुए भी उनके मन में कोई दुश्मन नहीं था यही बात उनकी अत्यन्त सिद्धि की सिद्ध कर देती है।

निर्मल हृदय चापू

गांधीजी अपन विरोधियों का भी मर्द पहुँचाना करते थे। अंग्रेज अफ्रीका में जब वे रहते थे तब उनके विरोधियों का एक शिष्ट मंडल जनरल स्मथ्स से मिलने गया था। लेकिन उनमें म किमी भी यक्ति में इतनी दक्षता या भाषा ज्ञान नहीं था कि वे अपना बात को कह कर जनरल स्मथ्स को प्रभावित कर सकें। अंत में उन्होंने इसक लिये महात्माजी से ही प्रार्थना की। अपने कार में अपन ही शत्रु को विरोधी माने कहना कौन चाहेगा ? लेकिन महात्माजी ने उनका आग्रह का कायम रखते हुए उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उन्हें पूरा पूरा सन्तुष्ट भी किया। इस प्रकार वे द्रव्य और वैर को पूरा तरह नष्ट कर चुके थे। वग जानि, सम्प्रणय या दण तक ही नहीं, मानव मात्र पर उनका प्रेम था। उनको देखते ही ऐसा भास होत लगता था मानों प्रेम ही गांधीजी का रूप में अवतरित हुआ है। उनके अंग प्रत्यंग से प्रेम का ही सरना सरता रहता था। उनकी वाणी का श्रवण करना प्रेमामृत का पान करना की तरह लगता था। उन्होंने अपनी निटगी में जा जो महान् काय किया उसक मूल में मानव प्रेम ही लिखाई पत्ता है। जब जब वे मानव के प्रति किसी का द्रव्य या वैर उक्ति को देखते थे तब तब उनका हृदय बन्ना दुर्मित हो उठता था, जिसकी शांति के लिये उन्हें उपवास की शरण लनी पड़ती थी। सन् १८३० में जब वे यरवडा जेल में थे, उस समय वहाँ क जेलर मिस्टर किवन चापू से गुजराती पत्र के लिय आया करते थे। चापू उन्हें बालपोथी पत्रान थे। लेकिन जब वे एक दिन नहीं आय तो चापू ने दूसर दिन उनकी खबर करना क लिय काका साहब को उनके पास भजा। भोजन कर लने पर काका साहब ने गांधीजी से कहा कि मिस्टर किवन कल एक आत्मी को फाँसी देने के काम में रुक गया था अतः पत्रन नहीं आ सके थे। बस, फाँसी देना का नाम मुनत ही गांधीजी ती अस्वस्थ हो गया। उनका खहरा उल गया। उन्होंने

कहा—काका, त्वाया हुआ अनाज अभी पर स बाहिर निकल जायगा । उस मनुष्य का पानी का चित्र सामने गड़ा हो जाने स गांधाजी इतन अन्वस्य हो गय कि उसस काका माइर भी घबरा गय । एक मनुष्य की इत्या स भी अब ने इतन दुखित हुए ता सैकड़ों मनुष्यों के लून स उनकी आत्मा किननी दुखित होती रहा होगी ? इस बात का महत्व ही अंदाज लगाया जा सकता है । इत्या ही नहीं, पर मानव हृदय में रहे हुए रूप भाव, वैर भाव भी उनको शय की तरह लुप्त थ । य मानव हृदय में प्रेम की निमल योनि जगाने क लिये सग तपर रग कर्त थ और उनका यह हृदय विनाम था कि समस्त मानव समाज थ यह योनि जगाइ जा सकती है ।

प्रचलित दीप स्तम्भ

और और अहिंसा क प्रतीक बापू, अखंड प्रचलित दीप-स्तम्भ की तरह थ । आखिरी कुछ महाने ता उनक मयकर परिस्थितियों में गुजर—मानों प्रलयकाल हा, लकिन ऐस समय स भी व अपने आत्म को ध्यय को कृतस्य की तरह पकड रहे थ । और उनकी धीमी पर सुदृष्ट आनाज मल तथा पुरुषाय का रगन कराती हुई लार्ग को बराबर ऊपर ने मुनाइ र रही थी । चारो तरफ दीपक बुझ रहे थ, पर यह उज्वल दीपस्तम्भ अखंड रूप में बल रहा था और आमपास क हिंसा तथा द्वेष के निमिर में अपनी प्रकाश किरण फैक रहा था । स जीती जागती प्राणवान आ मा का न ता कोइ अनवस्था धर सकी और न कोइ घटना ही उसका विकृत कर सकी थी । ता० २७ १ ४८ के प्राथना प्रचन क य शब्द इसी की सानी ट रहे हैं । वे कहते हैं—‘वैर-वृत्तिकी चुपी इच्छा भी मत रखो ।’ दरगाह को कीमी तूफानो स जो नुकसान पहुँचा उसक लिय गांधीजीन दुख यस्त किया था । उठोते कहा था कि ‘पाकिस्तान में भी ऐसा ही हुआ था, कहना कोइ ठीक जगानही है ।’

एसी वैर वृत्ति को अटका न सकें, क्या हम हृदय तक हमारा पतन हो चुका है। बुराई की बुराई क दुल्ना उचिता नहीं कहा जा सकता।'

अनासन्नित के उपासक

महापुरुष का तानरा लक्षण अल्प है। राष्ट्र विभी भी प्रसंग में गेन नहीं करत थे। व बह विक्रम प्रसंग में भी खुन रहत थे। मन् १९४४ में व जिन्ना से मुलाकात करन के लिय बम्बई आय य। उस समय हमारा भी मिलना राष्ट्र म हुआ था। उस समय मुलाकात के निष्फल होने पर भी राष्ट्र क चर पर लगामात्र भी स्व नजर नहीं आता था। मानो कुठ हुआ ही न हो, यो पूण प्रम न चित्त से व जाने किया करत थ। एसे तो अतको प्रसंगों से उनका जीवन भरा हुआ था फिर भाग कभी अप्रस न नहीं रह थे। अनासन्नित क ये उपासक थ और इनाम उन्हें सफलता या असफलता एग तक न कर सकी थी।

सच्चा स्मारक

इस प्रकार समय, अल्प और अल्प गुणों द्वारा गांधीजी महानत क अधिक बन य। आज उनक इंदी गुणों की सुगल चारों तरफ फैल रह है। और यह सुगल ही करोहो पकितयों क नेत्रों में म अश्रु धारा बहा रह है। उनका परित्र जीवन उनक पाम जानेवालों में भी परित्रता भरता था। कइ बपा पूव बम्बई के गऊन हॉल में एक विद्यालय मभा क समस्त भाषण दत हुए अमीका से लौकर गोवल न कथ था—'गांधीजी क सातिध्य में रहन पर मुदर मन्त्रि या मन्त्रिद में खड हो एसे भय विचार आत हे उनक उच्च जीवन को अपन सामन रख कर उनक पथ पर हम सब चलें यही उनका सच्चा स्मारक है।

ता १ ० ४८ }

घाटकापर की शाक मभा में
महात्माजी की ती गढ़ अजति

यत्र-युग और गृहयोग

यत्रों से हास

आज का युग यत्र युग क नाम से प्रसिद्ध है । इस आखिरी शताब्दी में यत्रों ने जो शासनाधीन प्रगति की है, वैसी पहले कभी नहीं हुई थी । हम प्रगति का सर्वोच्च गिाएर 'अणुयुग' है, लेकिन इस प्रगतिगामी युग क समा यत्र क्षणिक सुख टन क मिया अथ सय प्रकार से हानि प्रप्त ही सिद्ध हुए हैं । यत्रों का प्रवृत्ता से मानव जाति यत्रयत् बनती जा रही है । यह अर्थन हितार्थन का विचार भी नहीं कर सकता । यत्रों में आर्थिक, गारीयिक, बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक यों सबतोमुखा हास हा हाता है ।

यन्त्र और चरसा

क्रिया क समस्त प्रतिक्रिया सेना स्वाभाविक है । रामण क सामन राम, टानव क सामन टव, कम क समस्त कृष्ण, सिता के समस्त अरिस्ता और पाप के सामने पुण्य जैसे पैरा गोन ह, जैसे ही यत्र प्रवृत्त्य के सामन गाधीविचार पैदा हुआ । गाधीजी ने यत्रों क सामन धरम की—गृहयोग की प्रतिष्ठा की । यत्रों में होने वाले मरतानुष्ठी हास का गृहयोग द्वारा रोका जा सकता है ।

आशका गलत है

कह लोगो का म्बाल है कि यत्र वाहुय क इस अमात्र में गृहयोग बना कर सकेगा ? दुनिया की बड़ा बड़ा मिलों क सामन अगर थोड़ा से मनुष्य चरने चलान लग जायें तो उसम क्या होन जाला है ? लेकिन एसा बोचना ठीक नहीं है । उावा यह प्र न तो एसा है कि अमात्रम की काली

गत म किता का बाहिर निकलो का काम पड और उह उस समय उह कह कि शिर क गहनतम अघकार को मग दीपक बैस तूर क सकगा? एता ममज्ञ कर जैम उसका अरम म भयकता मृगनापूग हे, वैमे ही ऊर का प्रहन भी अज्ञानतापूग हे। उरवा क इम भीषण समय मे उह उद्योग जैमी छागी ती प्रवृत्ति भी अघर म दीपक की तरह हे। 'दीपक म दीपक जलता हे' उस पाप स अरक दीपक प्रज्वालन कर उरवा का अघकार तूर करे, य आगा इम रत्नी प्वाहय।

यत्र उद्योग से बेकारी बटती है

वामक दृष्टि म यत्र उद्योग और उह उद्योग का निरापण करने प प्रती जाता हे। क यत्र उद्योग महारमा याता महान इमक हे जब कि ग उद्योग अल्पारमी हे। उ उरण क तीर पर इम कपड को ही म—मिल का कपडा और खाता। मिल क कपड में एकद्विज स पचत्रिय तक रिता हे। कपड को मुगाम गीर लमकाण बान क त्रिय म पर पशुर्मा की चरवा लगाइ जाता हे। इमक सिना मिने क कारण घर में चरवा लगन काल और पाय स कपटा बुन काल बहुत म बकाग हा जान हे। उ उद्योग म उगमग १०० मनुष्य जितना काम करो हे उतना मिल म एक आर्मी कर लता हे। इम १० आर्मी बकार बन जात हे। और उनकी आजाविका का सहारा टू जाता हे। वृत्ति छ हा जाता हे, बिमका हिन्दू शास्त्रा में वध जैमा पाप बताया गया हे।

यत्र भूत ह

यत्र भूत क समान हे। जैम का कियान भूतकी साधना क और फिर भूत कहे कि मुझ काम मे गही ता में पुर्छे गा जाऊगा, वैम यत्र की भी काम नहा त्रिया जायता हे माटिक को ही गा जान हे। यानी तत्र य स्वना गति म अर की बात हो जाता हे। जैम वैम यत्रो म अवि

नाम लिया जाता है उसे व्याप्त भी मना जाता है। उपासन क माय विनाम का मन्त्र पैग हो जाता है। इसमें लिये युद्ध का नीरत भा जाता है। अपना मात्र सब देशों में बचा जाय उसके लिये ये युद्ध हान हैं। राजाओं पर कृपा करना, हमके लिये युद्ध तक की तैयारी रखना, इस तरह यत्र और युद्ध की माकूठ परम्पर जुड़ी हुई है। नम यत्र या यत्र की म्बु का व्याप्त करने वाला हर एक मनुष्य युद्ध की महा मानव हिता का नागात्तर बनता है।

कप्रोद्योग में नृरता है

प्राचिन समय में रोमन = बाग्गा अपना शीक क न्वातिर छात्र छात्र बालका ५ हाथ का कर कुटी में रखा करत य और अपने सामन जीवित मनुष्यों क कपटो और गारर पर राल लगा कर जला दिया करत थे। एमे मनु-श्री का इम दूर करत =। परन्तु जो मनुष्य आज चमक और दामलता के लिये ही मित्र उख और दिसक चमक की रस्तुएँ उपयोग में लात है उनमें क्या ऐसा क्रूरा का अंग नहीं है? ता० १८ ११ ८८ क 'हरिजा २३' म श्री विगोरलाल मगन्गल ने लिखा था कि नरम चमक क लिये गमपती गाता का कल किया जाता है और फिर उसक गभ के दूठ का चमडा ११काठ कर उसकी रस्तुएँ बनाइ जाता है। नम बव म मुनाषा बहुत मिलता है। एमी रस्तुएँ काम में लाना कितनी बोर मिला और करता है। अन्ति प्रमियों की ता दनका स्वग तक नहीं करना चाहिये। आ तक चमक की रू उपाग की रस्तुओं का उपयोग नी दरा धामयों का माय चिह्न है।

आत्र समान में अधिक स्थिति विषयता के उच्च मन्तर पर पहुँच गइ है। एको मम करने क लिये गद्योग ही एक मात्र व्याप्त है। यत्रा दान नल क पानी की तरह एक हा नगद से नी धारा म न्ध बन बहाना

जाता है, जबकि यह त्याग द्वारा क्षरमर क्षरमर चरमात की तरह, सारसमात्र का पोषण होता है। आज धन का विभाजन करने के लिए अनेक नए प्रचलित हुए हैं, परंतु यथाथ में धन का योग्य वितरण करने वाला यदि कोई मरुवा और सत्त्व माग है तो वह महामात्रा द्वारा बताया गया महा त्याग ही है। यत्रा द्वारा मुझी भर मानव का करणगति बनत है और कगडों भूनी मरत है, अब कि एगोथाग द्वारा करोग मनुष्यों को मुझी भर अनाज पहुँचाया जाता है। इमालि महामात्रा न चरम का अत्रगता की उपमा दी थी।

मिली में काम करने वाले मजदूरों के गरीब अविगत अम स दुख हा बात हैं। कइया को क्षय और दमा जैसे रोग हो जात है। घर में बँकर काम करने वाले स्त्री पुरुषों को जब मिल स जाकर काम करना पडत है तब नैतिक पवन की भी गुरुआत होन लग जाता है। अमेरिका जैसे र्गों में ज। यत्र हरा का तरह फल ग हैं व। क एक अनुभवा श्री कुमारराज कहत हैं कि अमरिका का बहुत सी प्राथमग स्कुला में त्रियाधिका क त्रियाम प्राथमिक शिक्षण भी ग्रहण नहीं कर सकत है। इसका कारण बतात हुए उ होन लिखा है कि यत्रों की अविकता स ग्राह भी जट बन जाती है। इम प्रकार शारीरिक, नैतिक और बौद्धिक हिस भी यत्र हानिकर ही सिद्ध हुए हैं।

यत्र अशांति फैलाते है

यनों ने मुग साम्रा में ता बहुत उद्वि भी है, पर हृदय की मर शांति को हूट लिया है। मनुष्य घर में तो या बार, पर इतनी अधि स्वयं होती है कि मनुष्य अपन अन्तर्गत को नहीं सुन सकत। यानि निकले कि मोटर सायकल का पट पट, रेल की भकभक, विमान चरखर और मिलों की घर घर आवाज गुरु रता है। और घर में अ

ता पक्ष की सरसर टाइप राईटर की किल्क किल्क प्राइमम की सू सू और रोडयो की सरसर चालू हा रहती है। एसा अद्यान्त वानावरण मनुष्य के शान तन्तुर्भा को निबल बना देता है। चित्तवृत्ति एकाम्र नहीं हो सकती। एसी स्थिति में ज्ञानि कौं न प्राप्त हो। यह उद्योग ही इस अज्ञान्ति से बचा सकता है।

दोनों में अंतर

गृह्योद्योग घर को सुखा बनाता है और यज्ञोद्योग इस सुख का बरत्रान कर जाता है। गृह्योद्योग से चरित्र निमग्न बनता है, और मिलों में यह धूठ में मिल जाता है। गृह्योद्योग स संगीत का सुम्बर निकलता है और मिलों से ककश कट्टु ध्वनि होती है। गृह्योद्योग पानी का तरह अपन घर में ही पोषण करनेवाला है और मिल बदला की तरह अपन यज्ञ बुला कर उसका चूस खाता है और फिर दुनकार देता है। गृह्योद्योग का काम करत समय मन हिलारें मारता है और मिलों में काम करत समय मन चक्कर खाता है। गृह्योद्योग दबी है और मिल पतना राशुभी है। गृह्योद्योग में लगाया गया पैसा धी-धुंध में परिशर्त हो जाता है और मिल में लाया हुआ पैसा तत्पार बटुक और बम क रूप में परिणत हो जाता है। मिलों कारखानों और उनमें काम करने वालों को तथा बम से भय बना देता है, और घरखा या यह उद्योग हमसे निभय बना रहता है। मकन के समय में जब कि मकदा लाभ छूट जाता है तब घरखा या यह उद्योग हा मकदा सहायक बनाता है। आपका याद होगा कि गत युद्ध में जब कि अणुबम से जापान का नाश हुआ था और समस्त कल कारखाने नष्ट हो गये थे, तब बहा की मंत्र-बन्धियों की लत्ता घरखे न ही रखी था।

यत्रोद्योग अनार्य है

हम महोद्योग की आय धधा कह सकते हैं और यत्रोद्योग को अनाय । हमारे गुरुद्वय इस संबंध में खूब बारीकी से विचारते हैं । वे कहते हैं कि जितना परिमाण में यत्र या यत्र की बना हुआ वस्तुओं का उपयोग होता है उतने ही परिमाण में मनुष्य अनाय बनता जाता है । एक भाई ने जब उगल अपना मोटर खरीना का बात कही तो उन्होंने कहा कि 'हम महारथी साधन से मोटर की तीव्र गति की तरह ही मनुष्य अनायता कहेंगे में फसता चला जाता है ।' उनके टपनाथ यदि कोई भाई ऐसी साधनों में चैत कर आता है तो वह भी उनका प्रिय नहीं लगता । इस तरह वे यत्रोद्योग का अनायता की तरफ ल जाने वाला साधन समझते हैं ।

विवेक जाग्रति

विवेक बिना धन नहीं हो सकता । पत्नी बाल तो यह है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ कम करनी चाहिये । परन्तु जो आवश्यकताएँ जीवन के लिये अनिवार्य हैं उनका प्रवर्ण करने समय भी विवेक का जाग्रत रख कर उनके पीछे अप या महारथ तो नहीं जाता है इसका विचार करना चाहिये । यदि किसी व्याधर्मा को कोई यह कह कि इस बीबा को भारोग तो मैं तुम्हें पाँच लाख रुपया दूँगा, तो क्या वह व्याधर्मी यह काम करगा ? नहीं, वह यह काम हरगिज नहीं करगा और पाँच लाख रुपया छोड़ देगा । परन्तु यही व्याधर्मा यदि मौज शौक के लिये या सन्ता मिलने की दृष्टि से महोद्योग की वस्तुओं का त्याग कर यत्र की वस्तुओं के उपयोग में लगता हागा तो वह व्याधर्मी किम हत तक दयावान है । हमका आप सब ही विचार कर लीजियेगा । उपवास प्राणि तप करन वाला और धार्मिक क्रियाएँ करने वाला पुनश्च यदि वस्तुएँ कुछ महगी है या दम्पन में अच्छी नहीं है, उसके लिये ही महोद्योग को अनाय नहीं कहें तो वह उग्र लियभितना विचारणीय सवाल हा जाता है ?

बुद्ध विचारणीय प्रश्न

गांव में क्या खाना गुरु हो तो आप सब उसका कितना विरोध करेंगे ? परन्तु यदि गांव में मिल शुरू होती है तो क्या आप उसके विनाफ वुठ करंगे ? अमे कसाह के लिये समाज में स्थान या प्रतिष्ठा नहीं है, बस ही उद्योगपति भी प्रतिष्ठा के अधिकारी कैसे मान जा सकते हैं ? खुले आम बाजार में यदि कोई मुसलमान गोपध कर तो सारे बाजार में दृष्टान्त हो जायगी, परन्तु जब उठी बाजार में नया कारखाना खुलता हो तो उस समय विभा का वुठ भी विचार क्यों नहीं आता ! मुझे बड़ा दिस्मय होता है कि अब तक इन्सान इस सत्य को क्यों नहीं समझ पाया है !

हम निश्चय करें

आज के गांधी जयंती के पत्रिका पत्र पर और गृहयोग प्रमाण के इस उपघटन के समय हम सबको यह निश्चय कर लेना चाहिये कि जहां तक गृहयोग की अल्पद्विंदक वस्तुएँ मिलती हों वहां तक दूसरी कोट यत्र निर्मित वस्तुएँ न खरीदेंगे । यह कल्पयुग है । कल यानी मशीन या यंत्र का युग । परन्तु गृह उद्योग इस कल्पयुग को मतयुग यानी गांधीयुग में परिवर्तित कर सकेगा ।

गृहयोग तप है

गृहउद्योग की अल्पद्विंदक वस्तुओं का प्राप्त करने में यदि थोड़ी कठिनाई उठानी पड़े और फिरना भी पड़े तो उस समय यह समझना चाहिये कि यह ताप धर्म यात्रा है । अधिक महंगी पड़ती हो तो यह समझ लेना चाहिये कि बनी हुई कीमत हम अपने देशवासियों को मान दे रहे हैं । गृहयोग की वस्तुएँ

यदि कोमल न हो तो यह समझ लेना चाहिये कि कोमलता का त्याग भातप ही है । माराग य कि चाह जिस तरह भा अहिंसा प्रमियों को उद्योग का महारभी उन्तु-ओ का त्याग अवश्य करना चाहिय ।

आन्कार
७ ५०

}
}

[महोद्योग प्रवचन क समय
लिया गया प्रवचन]

महात्मा गांधी और जिन्ना

बापू और जिन्ना में अंतर

मानव की जिन्दगी तगिक होता है पर उष्ण सूक्ष्म जीवन हजारों वर्षों तक चारित रहता है। राम और रावण हजारों वर्षों पूर्व हुए थे और उनका स्थूल जीवन नष्ट हो गया, लेकिन आज भी उनका सूक्ष्म जीवन चिन्ता है। राम के जापन का ममुरता और रावण के जीवन की कटुता आज भी दुनिया में फैली हुई है। इसी तरह कृष्ण और कर्म की याद भी अभी तक बना हुई है। यही बात हमारे सामान्य बापू और देण का विभाजन करने वाले जिन्ना का देहावसान बताता है। दोनों ने अपना स्थूल देह छोड़ दिया है लेकिन समझना यह है कि जबकि महात्माजी का विरोग समाचार सुनकर पत्तार दृश्य मानव भी विवक्षित थे, लोगों का आँखों से अनुधास यह चली गी तब उनके प्रति शर्मा जिन्ना के अग्रसर क समय ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। इसका क्या कारण था? जिन्ना और महात्माजी के जापन में जाकाश पालात का अन्तर था। एक उर्ध्व गामा जाकाश का जीव था तो दूसरा पाण्डु। एक ने अपने दुष्ट स्वभाव के खातिर चालास करोड़ मानवों का भागिना था, तो दूसरे ने चालास करोड़ मानवों के लिये अपना भागिना था—अग्रणी जिन्ना दुर्दान्त की था। यही अन्तर दोनों के अन्तर था। इसलिये जिन्ना के अग्रमान से लोगों को कोई दुःख नहीं हुआ।

महापुरषों की मैत्री भावना

मानव का जापन शणिक है व पशुओं को मरना ही भले ही सगम ही जीव या महाचार है कि लेकिन मौत तो है। तब फिर हम मर कर भा क्या है? हमें सूक्ष्म न

जाँचें कि जो वर्षों तक इस पृथ्वी पर जना पुता-घ फैलाता रह ! महापुरुषों के जीवन-काल को हजारों वर्ष यतीत हो गये हैं, फिर भी उनकी सुगमता बना हुआ है। ऐसा उनमें क्या था ? क्या हम भी वैसा नहीं कर सकते ? महापुरुषों के जीवन में मैत्री भावना भरी रहनी है। करुणा और मैत्री के मनोद्वार फूट उनके हृदय में खिले हुए होते हैं। गांधीजी के जीवन में भी ऐसी ही उत्तम भावना मरी थी, जिसमें अजमा उनका जीवन हमें अत्यन्त प्रिय लग रहा है।

चापूरी मैत्री-भावना

मैत्री-भावना जैन धर्म का मूल है। पद्माकाय से लेकर पन्चद्वय प्राणियों तक यह भावना रहता है। 'मिमी मे स वसुधु' से यही ताबित होता है। महात्माजी के जीवन में यही भावना थी। व जिसमें लगने से उसमें भी वैराभाव नहीं रहता था। उनके जीवन का अन्तिका का एक अलग है तब यहाँ उनके कई दुश्मन भी हो गये थे, जो इनसे चिटे हुए थे। एक बार वे लोग, जो कि गांधीजी के दुश्मन थे, जनरल स्मट्स से उनके खिलाफ कुछ कहना चाहते थे। लेकिन क्या करें जिससे कि जनरल स्मट्स पर कुछ प्रभाव पड़ सके यह उनमें से किसी को भी नहीं सूझ रहा था। अन्त में वे सब गांधीजी के पास गये तो उन्होंने उन्हें जो कहना चाहिये जिससे कि स्मट्स पर कुछ प्रभाव पड़ सके, बताया और बड़े प्रेम से सिद्ध किया। मला, मैत्री भावना का इससे मुदर उदाहरण और कौनसा हो सकता है ? अपने गुरु को भी ऐसा सलाह देना क्या मैत्री भावना नहीं है ?

जिना का जीवन

दूसरी तरफ अगर आप जिना के जीवन का देखेंगे तो यहाँ आपको यह भावना नहीं दिखाई देगी, और ता क्या वे अपने भाइ के प्रति भी

प्रेम नहीं रखते थे। उनका सगा भाइ इम्बद की गोकुलदास तेलवाल (जा ग) हॉस्पिटल में मर गया, पर उसका खबर तक जिन्ना ने नहीं ली। मला जिन्ना मानस में अपने भाइ के प्रति भी अनुराग न हो उसके हृदय में क्या कभी मैत्री भावना समझ हो सकता है? उमे तो अपने तुल्य स्वाय की मैत्री थी जिसके लिये वह जाया और अंत में उसी के पाठ मर गया। आज उसका एसा ही अनविद्य जावन खेप रह गया है। उसके ज रन से आज हमें यही शिक्षा लेनी है कि हम भी कहीं उसी तरह अपना विपैला जावन यहाँ नहीं भिन्न जायँ, पर तु मानव हित के लिये योजवर हो जायँ। जैसा कि महात्माजी ने अपने जावन से हमें सजा दिया।

मैत्री का अर्थ

गांधीजी का जीवन में मैत्री भावना कूट कूट कर भरा था। मैत्री का मतलब यहा है कि दूसरे का प्रति भी अपने जमी भावना रखना। जैसे मानस अपने लिये सुख चाहता है वैसे हा वह दूसरे के प्रति भी सुख की कामना करे यहा मैत्री भावना का अर्थ है। यहा भावना महापुरुषों के जावन में भरा रहती है।

प्रमाण भावना

महापुरुषों के जावन में दूसरा जा प्रस्तु होती है वह है प्रमोद भावना। दूसरे गुणी मनुष्यों के गुणों को देख कर प्रसन्न होना प्रमाद भाव है। गन्' ४४ में जध मुझ गांधीजी से मिलने का मौका मिला था, तब प्रसन्नता जिन्ना की बात भी चल पडा थी। महात्माजी ने जिन्ना के विषय में कहा, वहाँ उसमें कई अरगुण हैं, यहाँ उसमें कई सद्गुण भा हैं। ऐसी भावना हा प्रमोद भावना है। महात्माजी में यह था, पर जिन्ना में यह भावना भा कहा थी? दोनों के जावन की

तुलना यदि कोई करना चाहे तो वह इन जातिरिक्त सद्गुणों को लेकर ही का ना सकता है। मानव में जब मैत्रा भावना आ जाता है तब वह मानव को ही नहीं, पशुओं को भी अपने वर्ग में कर लेता है। भगवान् महात्मा के समयमरण में यज्ञा जाति गिह् भी साथ साथ बैठे थे। मैत्रा भावना का कैसी परमोत्कृष्ट स्थिति या वह ? एसा मैत्रा भावना महापुरुषों के जीवन में रहता है जो सुगौ तक सुगंध नता रहता है। यह मात्मी के जीवन में इसकी सुरास था पर विना के जीवन में यह नहीं थी। यह मानवत्मान का गनु था। यह अपना दुर्गंधित गान छुड़ कर गया है जिसकी दुर्गंध मैरुडों यों तक वातावरण को वदुपित करता रहेगा। अतः हमें भी आज यह निश्चय करना चाहिये कि हम हमारा जीवन दुर्गंधित नहीं, सुगन्धित बनायें और इसका प्रयत्न करें। अगर हम इन शुभ भावनाओं को अपने जीवन में स्थान देकर विकसित करगें तो हमारा सूक्ष्म जीवन अपने लिये तो शुभ होगा हा, पर दुनिया के लिये भी दितकारी होगा। सुगौ तक उसमें जो सुगंध निकलेगी वह सारी दुनिया के पावों को धोती रहेगा। ऐसे शुभ जीवन से हा हा इह-नाक और परलोक को सुधार सकेंगे।

[जिज्ञा क भ्रमान पर लिग
गया एक प्रवचन]

हमारे शालोपयोगी श्रेष्ठ प्रकाशन 'प्यारे राजा वेदा' पर लोकमत

“ दोनों पुस्तकें अत्यन्त सरल भाषा में एक बालक के मानस व हृदय का उन्नत करने के लिए प्यारे राजा वेदे सम्बोधन के माध्यम एक पिता के प्यार से लिखी गई हैं, इस कारण यह पुस्तक सभी शालाओं के लिए ही नहीं, सब धर्मों व दशों के महापुरुषों में दिलचस्पी रखने वाले पाठकों के लिए भी पठनीय बन गई हैं।” — लोकमत (दैनिक) नागपुर

“ नरभेष्टाभ्या या अमोल चरित्र कथाभ्या वाचनानि मुलात्ता दृष्टिकोण व्यापक होइल च परंतु त्यादि पेशा या मध्वर्तन ती स्वधर्म समग्रप सम्बन्धाची भावना जाग्रत ठेविली गेली आहे त्याने उत्कृष्ट मार्ग दर्शन होण्या सारखे आहे । हि दी जाणणा-स प्रत्येक मुलांने हे सार हीं समग्र एकदा न दे, अनेकदा वाचावे इतके ते आकर्षक व चटकदार आहेत । ”
—लोकसत्ता (मराठी दैनिक) मम्बई

“ मिडिलस्कुलों में यह पुस्तक पाठ्यक्रम में रखी जाने योग्य है। ”
—प्रवाह (मानिक) अकोला

“ मुझ्चि पूण बाल-साहित्य के यथष्ट उत्पादन में प्रस्तुत पत्राकार चरित्रां वस्तुतः माग प्रदर्शन कर रही हैं । ”
—सम्मेलन पत्रिका (द्वैमासिक) प्रयाग

They are such as to catch the immediate attention of children and impress on them the noble qualities which go in the making of a great man. History, geography and ethics are all fused into an absorbing narrative and the result is as interesting as it is elevating. Hindu knowing children are sure to welcome those two books very warmly.”

—Bharat Jyoti (Sunday Edition)

“इसमें सन्देह नहीं कि ये पुस्तकें रोचक भी हैं और प्रेरणादायक भी। सम्पूर्ण सजीवताओं से ऊपर उठाने के लिए छात्र आदि सन्तोष-जनक है और मूल्य भी अनुचित या बढाकर नहीं रखा गया है।”

—प्रताप (दैनिक) कानपुर

“न्या (गोष्ठी) साध्या हिन्दी मध्ये सांगितल्या असन्याने हिन्दी भाषा आणि पुराण व इतिहास यांचा सुंदर छाप लहान मुलांच्या मत्सर करता शाळातून वाचनालयक हे दानदि भाग आहेत ”

—सकाळ (रविवार) पूना

“इसमें सन्देह नहीं कि हमारे महापुरुष हमारे जीवन से दूर जा पड़े हैं। लोगों में उनके अस्तित्व पर भा अविश्वास सा पैदा हो गया है। ऐसे वातावरण में बालकों पर प्रस्तुत पुस्तकों का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा। भावना की वृद्धि व बालकों की नैतिकता भी प्रभावित होगा। कथानक आनंद प्रधान हैं। पुस्तकें सर्वथा निर्दोष हैं।”

—प्रदीप (दैनिक) वटना

Pyare Raja Bet is a collection of big picture sketches of fifty great men of all creeds and nationalities. These publications should prove popular with boys and girls of tender age. They are written in simple language. Some parables included here emphasize a moral value in an interesting manner. —Times of India

Mr Ranka writing from behind prison bars has poured his heart into every line of the letter and it is in that affection that the appeal of his stories lies. The choice is wide enough and is intended to give the boys liberal education. Parents who wish to present their children with useful literature on birthdays will find these books handy. —The HITAVADA NAGPUR

लेखक

सम्पादक

रिपभदास राका

जमनालाल जैन, साहित्य रत्न

आकर्षक मुक्त पृष्ठ। पृष्ठ सख्या पहले भाग की ८९, दूसरे भाग की ७६। पुस्तकें कई स्थानों पर पाठ्यक्रम में रखी गई हैं। अनेक विद्वानों तथा नेताओं द्वारा प्रशंसित। दूसरा संस्करण भा हायोंहाय बिक रहा है। मूल्य प्रत्येक भाग का दस आने।

भारत जैन महामण्डल, वर्धा

